राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

[सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

५५१

ग्रन्थाङ्क ३८

प० कृष्णमिश्र विरचिता

पदार्थरत्नमञ्जूषा



प्र का श क

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

[सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ३८

प० कृष्णमिश्र विरचिता

पदार्थरत्नमञ्जूषा

प्र का श क

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामा यत अखिल भारतीय तथा विशेषत राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
सस्कृत प्राकृत, अपभ्रश राजस्थानी, हि दी आदि भाषानिबद्ध
विविध वाङमयप्रकाशिनी विशिष्ट ग्र थावलि

प्रधान सम्पादक

पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

सम्मा य सचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर,
आनरेरि मेम्बर आफ जमन ओरिए टल सोसाइटी, जमनी,
निवृत्त सम्मा य नियामक (आनरेरि डायरेक्टर)
भारतीय विद्याभवन, बम्बई, प्रधान सम्पादक,
सिंघी जन ग्र थमाला, इत्यादि

ग्रन्थाङ्क ३८

प० कृष्णमिश्र विरचित

पदार्थरत्नमञ्जूषा

प्रकाशक
राजस्थान राज्याज्ञानुसार
सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर (राजस्थान)

प० कृष्णमिश्र विरचिता

पदार्थरत्नमञ्जूषा

सम्पादक

पद्मश्री मुनि जिनविजय

प्रवशक लेखक

प० श्री दलसुखभाई मालवणिया

अध्यक्ष – लालभाई बलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामंदिर अहमदाबाद

प्रकाशनकर्त्ता

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

विक्रमाब्द २०२०	भारतराष्ट्रीय शकाब्द १८८५	खिस्ताब्द १९६३
प्रथमावृत्ति ५००		मूल्य ३ ७५

मुद्रक–मूल पाठ और परिशिष्ट स्वतन्त्र भारत प्रेस पटना।

मुखपृष्ठ वक्तव्य और श्लोकानुक्रमणिका आदि के मुद्रक–
श्री हरिप्रसाद पारीक, साधना प्रेस जोधपुर।

विषय - सूची





प्रधान संपादकीय किंचित् वक्तव्य



राजस्थान पुरातन ग्र थमाला के ३८वे मणि के रूप मे यह छोटा सा पदार्थ रत्नमजूषा' नामक प्रकरण ग्र थ प्रकाशित हो रहा है। यह प्रकरण ग्रथ जसल मेर के एक भडार मे से आज से कोई बीस वष पहले मुझे उपलब्ध हुआ था। इस ग्र थ की जो प्राचीन हस्तलिखित प्रति मुझे दष्टिगोचर हुई वह बहुत सुवाच्य अक्षरो मे लिखी हुई थी और उसका पाठ भी प्राय शुद्ध था। किसी अध्ययनशील विद्वान ने उस पर कुछ सशोधन आदि भी किया था। ग्र थ का कुछ आद्यन्त भाग पढ़ने से मुझे इस की रचना विशिष्ट प्रकार की मालूम दी और एक प्रकार से मेरे लिये अज्ञात सी प्रतीत हुई। मैंने उस प्रति पर से अपने साथी लेखको मे से किसी एक द्वारा उसकी प्रतिलिपि करवा ली और उसी समय मेरे मन मे हुआ कि कभी इस ग्रथ को प्रकाशित कर दिया जाय। सन १९५० ई० मे राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला का काय मैंने प्रारम्भ किया तो मेरे मन मे इस ग्रन्थ को प्रस्तुत ग्र थमाला द्वारा प्रगट करने का विचार हुआ और तदनुसार मैंने जसलमेर मे बनवाई हुई प्रतिलिपि को प्रेस कापी के रूप मे ठीक कर के प्रेस मे छपने को दे दिया। प्रारभ म मैंने इस ग्र थ की कोई अ य प्रतिलिपि, कही उपलब्ध हो तो उसको भी प्राप्त करने का कुछ प्रयत्न किया पर उसमे कुछ सफलता नही मिली और जो मात्र प्रतिलिपि मेरे पास थी उसी के आधार पर इस ग्र थ का मुद्रण काय चालू किया गया। बाद मे ज्ञात हुआ कि पूना के भाडारकर ओरिएण्टल रिसच इ स्टीटयूट के ग्र थ सग्रहो म काश्मीर की पुरानी शारदा लिपि मे लिखी हुई इस ग्रथ की एक पोथी है। तब मैंने उसको मगवाया और परिश्रमपूवक शारदा लिपि को पढ़ कर इस ग्र थ का मीलान किया। मीलान करते समय मुझे कुछ पाठ भेद भी दष्टि गोचर हुए परतु शारदा लिपि वाली वह पोथी अशुद्धिबहुल थी। इसलिये मैंने उसके पाठो का सग्रह करना निरुपयोगी समझा (शारदा लिपि वाली प्रति के अ तिम पत्र का एक चित्र भी छपवा दिया गया जो इसके साथ सलग्न है) और जिस जसलमेर वाली प्रति के आधार पर इसका मुद्रण किया गया वही इस रूप मे प्रकाशित हो रहा है।

इस छोटे से प्रकरण ग्र थ को छपाने मे प्रेस की विडबना और विलबता के कारण बहुत दिनो तक प्रतीक्षा करनी पडी।

पिछले कुछ महिना से मेरी शारीरिक स्थिति दुबल एव क्षीण होती जा रही है। मैं अब अधिक लिखने पढने की स्थिति से वचित हो रहा हू। यह ग्र थ यूही पडा न रह जाय इसलिए इसके विषय मे एक छोटा सा प्रवेशक लिख देने के लिए मैंने अपने विशिष्ट दशनशास्त्रज्ञ विद्वान मित्र प० श्रीदल सुख भाई से निवेदन किया और उ होने सहष मेरे निवेदन को स्वीकार कर जो प्रवेशक लिख दिया है उसी के साथ आज यह ग्र थ विद्वानो के हाथो म उप स्थित हो रहा हे। प० श्रीमालवणियाजी भारतीय दशन शास्त्रो के ममज्ञ विद्वान हैं। इन्होने जन बौद्ध एव हि दू दशन के अनेक मौलिक ग्र थो का सपा दन किया है और कई वर्षो तक बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के अ तगत जन दशन शास्त्र के मुख्य अध्यापक रूप मे रहे हैं और अब अहमदाबाद मे नूतन प्रतिष्ठित 'लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्या मदिर के मुख्य सचालक हैं। जसा कि 'प्रवेशक' मे श्रीमालवणियाजी ने ग्र थ का सार भाव बतलाया है, तदनुसार पाठको को ज्ञात हो जायगा कि यह पदाथ रत्न मजूषा प्रकरण ग्र थ वशेषिक दशन के तत्त्वो का वणन करने वाला है। हि दू दशन शास्त्र की दष्टि से वशेषिकदशन एक प्रधान और महत्त्व का स्थान रखता है। दशन शास्त्रो की गणना मे छ दशन मुख्य गिने जाते हैं, पर तु इस सख्या मे नामो के बारे मे अलग अलग उल्लेख मिलते हैं। शायद सब से पहले जिस विद्वान ने दशन की सख्या बतलाई वह जन आचाय हरिभद्रसूरि हैं। उ होंने सब से पहले 'षडदशन समुच्चय' नामक एक छोटा सा प्रकरण ग्रन्थ सस्कृत पद्य मे लिखा और इसमे जन, बौद्ध, साख्य योग वशेषिक, न्याय और मीमासा इस प्रकार छ दशनो का तत्त्व निरूपण किया। फिर, अन्य विद्वानो ने अ य रूप मे भी कई दशनो का तत्त्व निरूपण किया। वत्तमान मे लोक प्रचलित विद्वाना मे हि दू धम के जो अगभूत छ दशन माने जात हैं उनके नाम इस प्रकार हैं— याय वशेषिक साख्य, योग, पूव मीमासा और उत्तरमीमासा, इन बहुसम्मत छ हि दू दशनो मे वैशेषिक दशन अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है और इसी वशेषिक दशन का सक्षिप्त मे परन्तु सारभूत शब्दो मे यह 'पदाथरत्नमजूषा' ग्र थ परिचय दे रहा है। आशा है कि विद्वानो को 'राजस्थान पुरातन ग्र थमाला' का यह छोटा सा मणि उपयुक्त मालूम देगा। इसका सारभूत 'प्रवेशक' लिख देने के लिए हम अपने सहृदय विद्वान मित्र एव आत्मीयजन श्रीमालवणियाजी के प्रति अपना हार्दिक आभार भाव पुन प्रकट करते हैं।

श्रावणी पूर्णिमा
सवत २०२० वि०

मुनि जिनविजय

प्रवेशक

पुरातत्त्वाचाय गुरुवय श्रीमुनि जिनविजयजी की आज्ञा हुई कि मैं 'पदाथ रत्न मजूषा का प्रवेशक लिख दू। आचाय श्री जिनविजयजी के सपक मे मैं करीब ३५ वष से हू कि तु इस प्रकार की आज्ञा आज प्रथम वार हुई है। इस आज्ञा को पाकर बडभागी अपने को मानता कि तु जिस परिस्थिति के वश यह आज्ञा मिली है वह ऐसा मानने नहीं देती।

पचास से भी अधिक वष की साहित्य साधना और वह भी अनवरत एक दिन के विश्राम के बिना आचाय श्री जिनविजयजी की है। इ होने शताधिक ग्र थो का सुसपादन इस दीघकाल मे किया है और आश्चय तो इस बात मे है कि अनेक साथी होते हुए भी इ होने अपने साथियो को उनके द्वारा सपादित ग्र थो का कुछ भी काय कभी सौपा नही। ग्र थ की खोज से लेकर कापी करना अनेक प्रतो को खोज कर उनसे पाठान्तर लेना, प्रेस और कागज की व्यवस्था करना, प्रूफ देखना, बाई डग की और उसकी सामग्री की और अन्तत बिक्री की भी व्यवस्था करना, ये सब काय सिघी जन ग्र थमाला हो या अ य माला, अपने ग्र थो के लिए इ होने स्वय ही किए हैं। और इ ही कार्यो मे अपनी शारीरिक शक्ति और आख की ज्याति का अतिम बि दु भी लगा दिया है। ग्र थमाला के मुरय सपादक रूप मे अ य द्वारा सपादित ग्र थो का भी बहुत सा काय ये ही निपटा लेते थे तो उनके द्वारा सपादित ग्र थो मे तो अ य की सहायता इ होने लेना कभी सोचा भी नही। किन्तु आज वे अस्वस्थ हैं, आख की ज्योति मद हो गई—ऐसी विवशता की दशा मे यह आज्ञा हुई, वह केवल कत्तव्य का आन द देती है। मैं इसके लिए इनका अत्य त आभारी हूँ।

आचाय श्रीजिनविजयजी ने कई भडारो का निरीक्षण किया है और उनमे से जो ग्र थ महत्त्व के प्रतीत हुए हैं उनका उद्धार करने की दष्टि से इ होने स्वय सकडो प्रतिलिपिया तयार की हैं या अपने साथियो से करवाई हैं। ऐसी प्रतिलिपियो का ढेर इनके अपने सग्रह मे है और कई पुस्तके प्रेस मे हैं—यह सब काय समाप्त हो—इसके पहले ही इनका स्वास्थ्य बिगडा और इनकी उन ग्र थो के विषय मे की गई नोंधे आज उस ढेर मे से खोज कर निकालना इनके लिए कठिन हो गया है। ऐसी परिस्थिति मे 'पदाथ रत्न मजूषा' नामक ग्र थ का विशेष विवरण देना इनके लिए कठिन हो गया है। अ यथा अपनी आदत के और बहुमुखी विद्वत्ता के अनुसार ये जो कुछ इस ग्र थ के विषय मे लिखते, वह विद्वानो के लिए अधिक उपादेय और सतोषप्रद होता, इसमे सदेह नही।

सिंघी जन ग्र थमाला मे सम्मिलित करने के लिए महत्त्वपूण ग थो की खोज करने की दष्टि से आचाय श्रीजिनविजयजी ई० १९४२ मे अनेक शारी रिक कष्टो को सहन कर के जसलमेर पहुचे थे। अपनी उस यात्रा का वीणन ये बनारस म पूज्य पडित श्रीसुखलालजी को लिखा करते थे। आज भी मुझे याद है कि उसमे अपने कष्टो को गौण रख कर नये नये ग्र थो के लाभ से होन वाले आन्द को ही विशेष रूप से ये अकित करते थे। उसी यात्रा मे जिन अनेक महत्वपूण ग्र थो की प्रतिलिपिया हुइ उनम से प्रस्तुत पदाथ रत्न मजूषा' भी था। यह आचाय श्रीजिनविजयजी से ज्ञात हुआ कि इस ग्र थ की जो प्रति मिली थी वह १५ १६ वी शती की लिखी हुई थी। आज उसकी विशेष नोध मिलना सभव नही है। यह भी ज्ञात हुआ हे कि आचाय श्री ने प्रेस मे देने के बाद पूना से शारदा लिपि म लिखी गई एक प्रत का फोटो भी लिया था और उसके पाठातर देने की इच्छा भी की थी कि तु उस इच्छा का भी विवशता से सवरण करना पडा हे। पूना की प्रत १६वी शती की होने का उनका अदाज है। इस परिस्थिति म 'पदाथरत्नमजूषा का यह सस्करण केवल एक ही जसलमेर की प्रत के आधार पर किया गया है।

हस्तप्रत मे यत्र तत्र टिप्पणी भी मार्जिन मे थी उसे भी यहा टिप्पणी के रूप मे मुद्रित कर दिया है।

लेखक का समय निश्चित रूप से तो नही जाना जा सकता किन्तु 'यायकदली' के बाद कभी यह ग्र थ लिखा गया है। इसकी प्रत जो मिली वह १५वी शती के आसपास की है, अतएव लेखक का समय हम १४वी शती के आसपास रख सकते हैं।

'पदाथरत्नमजूषा षटपदाथरूप मणियो से सुशोभित है' ऐसी बात यद्यपि उसके कर्त्ता कृष्णभट्ट ने अत मे (श्लोक ३१९) मे कह दी है, कि तु वस्तुत स्वय कृष्णभट्ट ने ही उद्द्श प्रकरण मे भाव और अभाव दो प्रकार का पदाथ इस ग्र थ मे निरूपित किया है (श्लो० ११)। इससे यह ग्र थकार वशेषिको की सप्त पदाथ मानने की प्रणाली का अनुसरण करने वाला है, यह सिद्ध होता है। ग्रन्थकार अपना नाम प्रत्येक प्रकरण के अत मे कृष्ण ऐसा दते ही हैं और ग्र थ के अत मे भी दिया है। किन्तु उ होने अपना कुछ भी विशेप परिचय नही दिया है। केवल इतना हो जाना जाता है कि वे दुर्वादिओ के लिये पचानन थे और शाङ्ग धारितनुसभूत अजु नराज के समय मे श्रीरेणुका के प्रीत्यथ यह ग्रथ बनाया है (श्लोक ३१९, ३२१)।

प्रशस्ति वाक्य 'इति श्री महाराष्टदेश्य श्रीकृष्णभट्टविरचिता पदाथरत्नमजूषा समाप्ता ।' से पता चलता है कि ये कृष्णभट्ट महाराष्ट्र देश के थे ।

प्रारम्भ मे आठ श्लोको मे कृष्णभट्ट ने जो मगल किया है उससे दो बाते फलित होती हैं—एक तो यह कि लेखक को अलकारशास्त्र का नपुण्य प्राप्त था और दूसरी यह कि वे किसी एक देव के नही कि तु अनेक देवताओ के भक्त थे । यह भी ज्ञात होता है कि सभवत उनके गुरु का नाम मचीश था जिनसे उ होने मीमासा दशन का अध्ययन किया था (श्लो० ८) ।

पदाथरत्नमजूषा' ग्र थ मे कुल ३२१ श्लोक हैं, उनमें से आदि अत के प्रासगिक १०+३ निकाल द तो कुल ३०८ श्लोक मे ही सक्षेप मे वशेषिक दशन के सारभूत तत्त्वो का निरूपण सुदर ढग से कर दिया है । कही भी अनावश्यक विस्तार लेखक ने किया नही है और वशेषिक दशन की आवश्यक कोई बात छोडी नही है ।

वशेषिक दशन के कणादसूत्र और उसकी टीकाएँ अनेक हैं । कि तु वे सब गद्य मे हैं । सप्तपदार्थी ग्र थ भी गद्य मे सूत्रात्मक ही है कि तु वशेपिक दशन का समग्र भाव से सक्षेप मे निरूपण करने वाली पद्यात्मक कृति तो सभवत यही पदाथ रत्नमजूषा' एकमात्र उपलब्ध है । कारिकावली नव्य याय युग मे बनी । वह वशेषिको के सप्तपदार्थो का तो निरूपण करती हो है कि तु प्रमाण विवेचन मे उसमे नयायिको के चार प्रमाणो को अपनाया गया हे । अतएव सप्तपदार्थो को प्राधा य दे कर वैशेषिक दशन का स्वतत्र पद्यात्मक ग्र थ तो यही एकमात्र पदाथरत्नमजूपा ही उपलब्ध है—ऐसा कहा जा सकता है ।

ग्र थ मे पदाथ को भाव अभाव मे विभक्त कर के प्रथम क्रमश द्र यादि षडभाव पदाथ का विवेचन किया है (श्लो० ११ २८९) और अन तर चार प्रकार के अभाव का निरूपण (श्लो० २९० २९६) कर के मोक्षस्वरूप के वणन (२९७ ३१८) के साथ ग्र थ को समाप्त किया है ।

पथ्वी, अप तेज और वायु—इन चार द्र यो का परिचय दे कर के कहा है कि यहा तक कायद्र यचतुष्क का निणय किया गया अब हम उसकी सष्टि और सहार की प्रक्रिया कहते हैं (श्लो० ४०)—इस प्रकार प्रतिज्ञा कर के ग्र थकार ने वशषिक समत सष्टि और सहार का भी क्रमश वणन (४१ ४८) कर दिया है । तदनतर आकाश, काल और दिक का वणन (४९ ५४) कर के आत्मा के विवेचन मे आत्मा के दो प्रकार किये हैं—ईश और अनीश । इस प्रसग मे स्वतत्र आत्मसिद्धि भी सक्षप मे करदी है (५५ ६२) ।

द्रव्यो मे अतिम मन का निरूपण (६२ ६५) समाप्त करके यह भी कह दिया कि तम स्वतत्र द्रव्य नही है किन्तु आलोकभावरूप है, अथवा मही रूप है अतएव द्रव्य तो नव ही हैं (६६)।

इस प्रकार कृष्णभट्ट ने द्र यनामक पदाथ का निरूपण कर के २४ प्रकार के गुणो का वणन किया ह (६८ २३४)।

इस प्रसग मे विशेषत पाकजोत्पत्तिप्रक्रिया द्रष्टव्य ह। इसमे पिठरपाक का निषेध कर के पीलुपाक का समथन किया गया ह (७६ ८०) तथा सयोग नामक गुण का विवेचन भी द्रष्टव्य ह (६५ १०३)। इसमे सयोग की उत्पत्ति और विनाश की प्रक्रिया का सुगम वणन ह।

बुद्धि के विवेचन मे भेदाग्रहरूप अख्याति, असतख्याति, आत्मख्याति और अनिवचनीय ख्यातियो का निराकरण कर के विपयय की स्थापना की गई है (१२० १२४)। अनुमाननिरूपण मे तक को अनुमानाग बता कर के उसके एकादश प्रकारो का विस्तत वणन ह जो जिज्ञासुओ के देखने योग्य ह। इसमे खास बात यह ह कि ईश्वरसिद्धि मे जो अनुमान दिया जाता ह उसके समथन मे तर्क के इन ग्यारह प्रकारो का वणन ह तथा तकदोषो का भी वणन है (१४२ १६६)।

यह भी ज्ञातव्य ह कि प्रस्तुत लेखक ने शब्द को पथक प्रमाण न मान कर के अनुमान मे ही उसका अ तर्भाव कर दिया ह (१८५)। उपमान (१८६), अर्थापत्ति (१८८), सभव (१८९), अभाव (१९०) और ऐतिह्य (१९१)। इन सभी प्रमाणो का कणादवर्णित प्रत्यक्ष और अनुमान मे ही यथायोग्य समा वेश कर लिया ह।

प्रामाण्य की स्वत सिद्धि का निराकरण (१९२ १९४) कर के प्रमाणता —यह स्वभाव ह कि तु शक्तिरूप नही—इस मान्यता को दृढ करने के लिये मीमासकसमत पथक शक्ति का निराकरण युक्तिपूवक किया गया ह (१९६ १९८)

शब्दगुण के वणन मे स्फोटरूपता का निराकरण किया गया ह (२२५ २२६) तथा शब्द की अनित्यता स्थापित कर के वेदापौरुषेयता का भी खडन किया ह (२२७ २२९)।

कमनिरूपण मे (२३५-२५३) कम की सिद्धि मे प्रमाण (२३५ २३८) देकर के उसके भेदो की सख्या पांच ही ह, यूनाधिक नही—इसका समथन ह।

सामा यविवरण मे (२५४ २७१) सामा य के विषय मे अपोहवाद आदि मतो का खडन कर के जाति की स्थापना की गई है। जातिबाधको का सग्रह श्लोक इस प्रकार ह।

व्यक्त्यक्यतुल्यते तद्वदनवस्थितिसकरो ।
सम्ब धशू यता रूपहानिरित्येष सग्रह ॥ (२६५)

ओर ॅयक्त्यक्य आदि होने पर जाति क्यो नही मानी जाय—इसको सोदाहरण स्पष्ट किया गया ह (२६६ २६६) ।

विशेष पदाथ का वणन अति सक्षिप्त ह, मात्र ६ श्लोको मे उसका विवरण समाप्त ह (२७२ २७७) ।

समवाय (२७६ २८८) और अभाव (२६० २६५) भी सक्षिप्त रूप से हो निरूपित हैं ।

अत मे मोक्षस्वरूप की चर्चा ग्र थ के अनुपात मे कुछ विस्तत ही ह, ऐसा कहा जा सकता ह (२६७-३१८) । इसमे मोक्षविषयक अ यमतो का निराकरण कर के आत्मा के बुद्धि आदि नव गुणो के उच्छेद को ही मोक्ष स्थापित किया ह और इस स्वमत का समथन 'अशरीर वा वस त' (३१३) इत्यादि आगम से भी होता ह और उस आगम का भी प्रामाण्य, काय अथ मे ही न हो कर सिद्ध अथ मे भी होता ह, यह बताया गया ह ।

यद्यपि यह ग्र ॅथ सक्षिप्त ह तथापि ऊपर के वणन से यह ज्ञात होगा कि वशेषिकदशन की सभी ज्ञातॅय चर्चा को इसमे स्थान अवश्य मिला ह । अतएव वशेषिकदशन का ज्ञान कराने का यह ग्र थ एक अच्छा साधन उपस्थित करता ह, यह नि सदेह ह ।

अहमदाबाद
दिनाक १०–६–६३

—दलसुख मालवणिया



पदार्थरत्नमञ्जूषाकी शारदालिपिवाली प्रतिका अन्तिम पत्र

श्रीकृष्ण-मिश्र विरचिता

पदार्थरत्नमञ्जूषा

प्रथम - द्रव्याख्यपदार्थवर्णनम् ।

श्रीस वज्ञाय नम ।

नमाम ससारोरुमिहिरदुर[1]तातपहर

मुहुब्रह्माद्युद्यद्वनकुमुदोल्लासचतुरम ।

घनस्वा[2]तध्वान्तक्षपणनिपुण चारुकिरण

नप[3]चास्यश्रीमच्चरणनखराकेशमरुणम् ।।१।।

त्र खेलति रमारमणीयो[1] यत्र चेन्दुरुदितो मुदिताश[2] ।

त्र भू[3]तिरुदभूदभिवद्ध नौमि त हरपयोधिमगाधम ।।२।।

ायपण्णकलिनाऽतिसुललिता शुद्धबोधकुसुमा हृदि परमा ।

क्तिविस्तृ[1]तिफला मम भवताद विघ्नराजकरुणाऽमृतलतिका ।।३।।

ञ्जीराद्यर्भूषणर्भूषिताया शश्वद्धि[1]श्वेशानकै[2] सेविताया ।

दे वन्द्य वेदवृन्दोदिताया पादद्वन्द्व रेणुकादेवताया ।।४।।

डि्घ्रयुग परिघ दुरिताना चारुनख सुमुख[1] सुकृतानाम् ।

ाधु गृणामि[2] कणादमुनीना भूधरजापतिजातमतीनाम[3] ।।५।।

१ अपरिमित । २ चेतसि ।
हृम । ४ च द्रम ।
) १ कृष्ण । २ प्रीणितदिग ।
म वा । ४ प्रकटीबभूव ।

(३) १ सूक्तिविस्तारप्रयोजना ।
(४) १ अनवरत । २ जगतपतिभि ।
(५) १ समख । २ स्तौमि ।
३ इश्वरोत्प नजातबद्धीनाम ।

भरत[1]हृदयविज्ञ नीलसुग्रीव[2]भृत्यम, हरिबल[3]कृतवुखाम्भोधिसत्सेतुबन्धम ।
हत[4]खररिपुवर्ग सीतयालङ्कृताङ्कम, गुरुवरमहमीश नौमि रामाभिधानम॥६॥

स्वज्ञानाम्बुधिसम्प्लुते जगति योऽनन्ताख्यपर्यङ्कका
मध्ये क्रीडति यत्पदाब्जयुगल लक्ष्म्या समासेव्यते ।
यस्यान्त[1] प्रतिभाति सर्वजगदावासो[2] इतो[3] ब्रह्मण
प्रादुर्भूति[4]रजस्र[5]मस्तकलिल[6] तन्नौमि नारायणम् ॥७॥

यत्पादाम्भोजाऽऽसेवात प्राप्तोऽह मीमासासारम ।
सच्चीश त वन्दे नाथ भ्रान्त्यज्ञानादिध्वसाथम् ॥८॥

मम सा निकषोपलके हि भवेद विशद मतिशुद्धिपरीक्षणकम ।
इति सकथयाम्यहमेतदिह क्षमतामभियन्तु[1] जना सुजना ॥९॥

अपास्तविस्तरा बालबोधवृद्धिप्रसाधिनीम ।
पदार्थरत्नमञ्जूषा कुर्व्वे सर्व्वेष्टदायिनीम ॥१०॥

शब्दवाच्य पदार्थ स्याद् द्विधाऽसौ सप्रकीर्त्तित ।
भावोऽभावश्च षोढेष्टो भावो भावविशारद ॥११॥

अस्तीति विधिधीवेद्यो[1] भाव प्रोक्तो मनीषिभि ।
द्रव्य गुणस्तथा कर्म्म सामान्य सविशेषकम ॥१२॥

समवाय इति प्राहुर्भेदान् भावस्य सूरय ।
कारण समवायि स्याद् द्रव्य त नवधा मतम् ॥१३॥

भूजलाग्न्यनिलाकाश काल-काष्ठा[1]त्मह[2]द्भिदा ।
गन्धाढ्या* भू शुक्लपीतहरिताऽरुण[3]मेचकम ॥१४॥

(६) १ भरतशास्त्र श्रीरामभ्राता च । २ नीलसुग्रीव इश्वरस्तस्य भृत्यस्तम नील सुग्रीवौ वानरौ भृत्यौ यस्य स तम । ३ कृष्ण बलन वानरबलेन वा । ४ हतो निर्ज्जित खर रिपूणा कामादीना वर्गो यन स त अथवा हत खरो नाम राक्षस स एव रिपु तस्य वर्गो यन स तम ।

(७) १ मध्य । २ स्थिति । ३ नारायणात । ४ उत्पत्ति । ५ निरतर । ६ निष्पाप ।

(९) १ प्राप्नवनु ।

(१२) १ ज्ञय ।

(१४) १ दिक । २ मन । ३ रक्त । ४ कृष्ण ।

*गन्धवतीत्यथ ।

कडार[1] चित्रमित्येव रूप सप्तविध पुन ।
कटुतिक्तकषायाम्लमधुरक्षार[2]भेदत ॥१५॥
षोढा रसो द्विधा गन्ध सुरभी[1]तरभेदत ।
स्पर्शस्तु पाकजोऽनुष्णाशीतो नानात्व[2]मीरित ॥१६॥
सख्या मान द्विधाऽणुत्व-मध्यमत्वविभागत ।
पथक्त्व योगभागौ च परत्व चेतरत तथा[1] ॥१७॥
गुरुत्व हेतुक[1] चव द्रवत्व सस्कृतिस्त्वरा[2] ।
स्थितस्थापक इत्येते चतुदश गुणा भुव ॥१८॥
नित्याऽनित्येति सा द्वेधा नित्याऽणु परिकीत्तिता ।
मूर्त्तोऽवयवहीनश्चेदेतत् स्यादणुलक्षणम ॥१९॥
पटकुम्भस्थजातित्वाद् भूत नित्यस्थमिष्यताम् ।
सत्तावदित्यणो सिद्धिरनित्या त्रिविधा मता ॥२०॥
विषयेन्द्रियदेहाख्या योनिजेतरभेदत[1] ।
द्वेधाऽन्त्या योनिजा त्वस्मदादीनामितरा[2] द्विधा ॥२१॥
धमजाधमजत्वेन मुनिक्षुद्र[1]शरीरिणाम ।
न पाञ्च[2]भौतिको देहोऽप्रत्यक्षत्वादिदोषत ॥२२॥
चित्ररूपरसस्पश स्याच्च हेत्वनुसारत[1] ।
परिमाणविभेदेन बालवृद्धादिभेदत ॥२३॥
भिन्नो[1] देहो यथा कुम्भकरकोदञ्चनादिकम् ।
स्याद घ्राणमिन्द्रिय तच्च गन्ध[2]धीतोऽनुमीयते ॥२४॥

(१५) १ कपिल । २ लवण।
(१६) १ अमरभिश्च । २ पथि या बहुसख्या उक्ता ।
(१७) १ अपरत्व ।
(१८) १ अग्निसयोगात्पाद्य । २ वग ।
(२१) १ अयोनिजा । २ अयानिजा ।
(२२) १ मशक । २ पचभूतारब्धा दह इति चार्वाक ।
(२३) १ पथि यादिसमवायिकारणानुसारत ।
(२४) १ अवस्थाभदनापि शरीरभदो न भवतीति पर वदति । २ तत्र करणजन्या कायवीत्वात। रूपा वत इत्यनुमानन घ्राणेन्द्रिय सिद्धि परिशषात ।

मृदादिविषयोऽभीष्ट इति प्रकरण भुव ।
रसवत्त्वादिसारूप्याद वक्ष्यामो जललक्षणम ॥२५॥
पाथस्तु[1] स्नेहवद्रूप शुक्ल स्यान्मधुरो रस ।
स्पश शीतो गुरुत्वान्ता सख्याद्या पूववन्मता ॥२६॥
अहेतुक[1] द्रवत्व च सस्कारो वेग इष्यते ।
गुणाश्चतुर्दशते स्युरम्भसस्तद द्विधा कुवत ॥२७॥
अणु नित्यमनित्य तु त्रिधा देहादिभेदत[1] ।
देहोऽयोनिज एवास्य श्रुतिगम्य प्रचेतस[2] ॥२८॥
लोके त्विन्द्रियमस्येष्ट रसन रसधीप्रथम्[1] ।
विषय सरिदादि स्यादित्याप सन्निरूपिता ॥२९॥
तेजो गुरुत्ववद्रूपि शुक्ल स्वाऽन्यप्रकाशकम्[1] ।
रूपमुष्णो भवेत् स्पश सख्याद्या द्रवतोत्तरा[2] ॥३०॥
क्षितिवद्वेग एवेष्ट सस्कारस्तद द्विधाऽम्बुवत् ।
पराणु[1]लक्षण नित्यमनित्य विग्रहादिकम ॥३१॥
वर्ष्मा[1]ऽयोनिजमादित्यलोके रूपमतिप्रथम[2] ।
इन्द्रिय चक्षु[3]रग्नी[4]न्धुहे[5]मजा[6]ठरसज्ञक ॥३२॥
विषयो रविदी[1]पस्थजातित्वाद द्रव्यता[2] यथा ।
तेजस्त्व[3] हेमवत्ति स्याद्धेम्नस्तजसतेदशी ॥३३॥
अग्नेरपत्य प्रथम[1]मित्यादि श्रुतितोऽपि च ।
इद तेज समुद्दिष्ट वक्ष्यामोऽथ समीरणम ॥३४॥

(२६) १ यत स्नहवत तन पाथ इति लक्षणकीत्तनम ।
(२७) १ अग्निसयागानुत्पाद्य ।
(२८) १ आदिश न्न इन्द्रियविषयौ । २ वरुणस्य लोके ।
(२९) १ रसबुद्धिप्रसिद्धमित्यथ ।
(३) १ नमित्तिकी । २

(३१) १ परमाणलक्षणम ।
(३२) १ शरीर । २ रूपबद्धयनुमय । ३ भौम । ४ दिय । ५ आकरज । ६ औदर्य।
(३३) १ साधन । २ दृष्टान्त । ३ पक्ष । ४ साध्य ।
(३४) १ सुवणमिति शषः ।

नीरूप स्पशवान वायु स्पर्शोऽस्यानुष्णशीतक[1] ।
अपाकजश्च सख्याद्या अपरत्वोत्तरा गुणा ॥३५॥
पूवव न्नवमो वेगो द्वविध्य चापि पूववत ।
नित्योऽणुरितर[1] प्राणविषयेन्द्रियदेहभाक ॥३६॥
अयोनिज महल्लोके वध्मस्पशनमिन्द्रियम ।
स्पशबुध्दचऽनुमेय स्याद विषयस्तु महानिल ॥३७॥
स च न स्पशनाध्यक्षो[1] वियदात्मदिगादिवत् ।
नीरूपद्रव्यरूप[2]त्वादिति हेतो समीरण ॥३८॥
प्राणोऽपानस्तथा व्यान उदानोऽथ सम।नक ।
एकोऽपि स क्रियाभेदात प्राण पञ्चविधो मत ॥३९॥
कायद्रव्यचतुष्कोऽय निरणायि[1] प्रयत्नत ।
अधुना सृष्टि सहारविधिमस्याऽभि[2]वध्महे ॥४०॥
क्षुब्धश्रीमन्नृप[1]ञ्चास्यजगत्सहरणेच्छया ।
प्राण्यदष्टादणुष्वाद्य कम सजायते तत ॥४१॥
भागस्ततो योगना[1]शस्तस्माद द्रव्य विनश्यति ।
ततश्चन्द्रललामस्य सिसक्षात क्रियाऽणुषु ॥४२॥
ततो यो[1]गस्ततो भू[2]तभौतिकोत्पत्तिरीरिता ।
अणुद्वयेन द्व्यणुक[3] तैस्त्रिभिस्त्र्यणुक भवेत ॥४३॥
इत्यादिक्रमत सष्टिरङ्गीकार्या विचक्षणै ।
अणोरारम्भकत्व चेदेकस्याना[1]शिता भवेत ॥४४॥

(३५) १ उष्णश्च शीतकश्च उष्णशीतकौ ाभ्याम् अन्य ।
(३६) १ अनित्य ।
(३८) १ स्पशन प्रत्यक्षो वायरिति ा५य । २ घटादिव्यदासाथ नीरूपपर्द स्पशा न्व्युदासाथ द्र यपदम ।
(४०) १ निर्णीत । २ कायद्रव्यचतुष्कस्य
(४१) १ क्षोभवत परमश्वरस्य सजिघृक्षया प्राण्यधमवशात्परमाणुष प्रथमत क्रियोत्पद्यत ।
(४२) १ असमवायिकारणनाश ।
(४३) १ असमवायिकारण । २ भूता उत्पत्तिमतो य भौतिका पथ्व्यप्तजवायवस्तषा मुत्पत्ति । ३ द्व्यणुक ।
(४४) १ अनित्यता ।

कायस्य सततत्व[1] चापेक्षणीयाथ[2]हानित ।
बहूना[3] च न कायस्य महत[4] कायतो जनि[6] ।।४५।।
दृष्टा घटादिषु ततो द्वयोरण्वो समुद्भवेत ।
द्वयणुक तश्च बहुभि कायमारभ्यते महत् ।।४६।।
न द्वाभ्या[1] कारणारूढस्थौल्यबाहुल्यहानित ।
अन्त्यावयविन कायमणु[2] चव प्रसज्यते ।।४७।।
द्वयणुकादिक्रमेणात कार्योत्पत्तिरितीदशी[1] ।
लयोत्पत्तिस्थिति प्रोक्ताऽधुना गगनमुच्यते ।।४८।।
आकाश शब्दवत्तस्य शब्दकत्वादयो गुणा ।
भागान्ता षडज तच्च कारणत्रयहानित ।।४९।।
नित्य च नाशहेतूनामभावाद् विभु चेरितम् ।
नीरूपद्रव्यताऽतश्चाचाक्षुषत्व विहायस ।।५०।।
तत शब्दकमेथ स्यादित्यम्बरपरीक्षणम् ।
अथाभिदध्महे कालकलना[1]मलमादृता ।।५१।।
कालश्चिरादिधीहेतु सख्याद्या पञ्च तदगुणा ।
आकाशवल्लयो[1]दवकलवादिव्यवहारकृत ।।५२।।
निरश[1]द्रव्यरूपत्वादजो नित्यश्च गीयते ।
नाना[2]तौपाधिकी तस्येत्येषा कालनिरूपणा ।।५३।।

(४५) १ स वदोत्पत्तित्व। २ परमाण्व तरापेक्षाभावादित्यथ । ३ परमाणूनाम् । ४ अणुकादिलक्षणस्य महत्कायस्य कायत उत्पत्तिमत पदार्थात । ५ समवायिकारणस्य नित्यत्वात असमवायिकारणस्य चाभावात । ६ उत्पत्ति ।

(४७) १ द्वयणकाभ्या च अणकमारभ्यत तर्हि द्वयणुकनिष्ठमेव परिमाण त्र्यणकेऽपि स्यात। अणुपरिमाणस्य द्वयणकादिनिष्ठस्यासमवायि कारणत्वानगीकारात । बहुत्वसख्यायाश्चा भावात । अत द्वयणकनिष्ठमव परिमाण त्र्यणकेऽपि स्यात। न च तथा अतस्त्र्यणभिद्वयणक स्त्र्यणकमारभ्यत इति सिद्धा त । त्र्यणुकनिष्ठस्य मध्यमपरिमाणस्य च त्रिद्वयणुकनिष्ठा बहुत्व सख्या असमवायिकारण सख्यापरिमाणप्रचया समवायिकारण परिमाणमिति भाष्यकारनिकर रुररीकृतत्वात्। २ अणपरिमाण स्यात।

(४८) १ सहारसृष्टिप्रकार ।

(५१) १ कालस्वरूप ।

(५२) १ विनाशोत्पत्तिस्थिति यवहारह तश्चत्यथ ।

(५३) १ निरवयव । २ भिन्नता।

दिक पूर्वापरधीगम्या कालवद गुणभूषिता ।
तन्नानातेनसचारोपाधिकेति दिगीरिता ॥५४॥
आत्मा तु चेतनो द्वेधा स्यादीशानीशभेदत ।
अनीशश्च न देह स्यात पार्थिवत्वाद् घटादिवत ॥५५॥
इन्द्रियाणि च नवाऽऽत्मा भौतिकत्वात पटादिवत् ।
अणुत्वान्न मनस्तच्च मनस साधयिष्यते ॥५६॥
अतस्तदव्यतिरिक्त स्यादात्माऽहबुद्धिगोचर ।
करणप्रेरको नित्योऽस्पशद्रव्यत्वतो मत ॥५७॥
सुखादिनियमान्नानाऽमूत्तद्रव्यत्वतो विभु ।
गुणाश्च तस्य धीदु खसुखेच्छायत्नभावना ॥५८॥
अदृष्टद्वेषसख्याद्या विभागान्ताश्चतुदश ।
इशस्तु क्षितितोयादिकर्तृत्वेनानुमीयते ॥५९॥
य सवज्ञ सव्वविदित्यादित श्रुतितस्तथा ।
ज्ञानेच्छायत्नसख्यादिभागान्ताष्टगुणान्वित ॥६०॥
अविद्योपाधितो भिन्नौ जीवेशानौ न नो मतौ ।
शुद्धे ब्रह्मण्यऽविद्याया अयुक्तेरितरत्र च ॥६१॥

(५४) १–२ नानात्वस्य भावो नानाता तस्या नानाताया इनभूतस्य सचार स एवोपाधियस्या सा इनसचारोपाधिका ।

(५५) १ साध्य देह एवात्मति नास्तिका २ पक्ष । ३ पथिवीसबधित्वात ।

(५६) १ अणुत्वम ।

(५७) १ यतो देहान्नीति आत्मा न भवति । २ देहेन्द्रियमनोव्यतिरिक्त । ३ करणानि केमचित्प्रेर्याणि करणत्वात कठारवत ।

(५८) १ आत्मा न भवति अणत्वात परमाणवत् । कश्चन सुखी कश्चन द खी इति व्यवस्था आत्मनो नानात्वम तरणानुपपद्यमाना आत्मनो नानात्व गमयति ।

(५९) १ धर्माऽधम । २ क्षित्यादि चतष्टय सकत क कायत्वात घटवत ।

(६०) १ इश्वरसिद्धि ।

(६१) १ अविद्योपाधिकृतो जीव परमात्मनोर्भेद इति वदान्तिन । २ अविद्या जाव निष्ठा ब्रह्मनिष्ठा वेति विकल्पऽस्य द्विषयति । ३ जीवपक्ष ।

परस्पराश्रयात्[1]तस्माद भेदो वास्तव[2] एतयो ।
निर[3]धार्यैवमात्माऽथ मन सप्रति रूप्यते ॥६२॥
अस्पर्शवन्मनोऽणु स्यात प्रमाण तत्र चेदृशम ।
सुखधी करणोत्पाद्या जन्यबुद्धित्वतो यथा ॥६३॥
रूपादिधीरिति प्रोक्तमानतो नित्यता[1]ऽणुता ।
नैरश्या[2]दणुवत्तस्य परताऽपरता त्वरा ॥६४॥
विभागो योगपार्थक्ये नानातेति गुणाष्टकम ।
मन इत्थ तमो[1]द्रव्य दशम नव सभवेत् ॥६५॥
आलोकाभावमात्रत्वा महीरूपतयाऽपि वा ।
अतो नवव द्रव्याणीत्येव[1] सवमनाकुलम् ॥६६॥
पदाथरत्नमञ्जूषाग्र थे कृष्णविनिर्मिते ।
पदार्थो द्रव्यसज्ञोऽय समाप्तोऽतिप्रिय सताम् ॥६७॥

———०———

(६२) १ जीवसिद्धौ अविद्यासिद्धि अविद्यासिद्धौ जीवसिद्धिरिति परस्पराश्रयो विज्ञेय । २ पारमार्थिक । ३ निरणायि ।

(६४) १ मनो नित्य अस्पर्शद्रव्यत्वात गगनवदित्यव लक्षणात । आकाशादिषु अनकाति कव्यदासाथ मूत्तत्वे सतीति विशषणमूह्यम ।

(६५) १ भाटटाना मत तमो न द्र धातरम् ।

(६६) १ नवद्र यस्वरूप स्वच्छ निरव यवत्वात ।

द्वितीय-गुणाख्यपदार्थवर्णनम् ।

जात्येकनिलय कर्माऽन्यत्वे सति गुणो मत ।
चतुर्विशतिधा भिन्नो रूप सरसग न्धकम् ॥६८॥
स्पर्शसख्ये तथा मान पृथक्त्व योगभागकौ ।
परताऽपरताबुद्धि-सुखदु खेच्छ्रास्तथा ॥६९॥
द्वेषयत्नगुरुत्वानि द्रवत्वस्नेहसत्क्रिया ।
धर्माऽधर्मौ तथा शब्द इत्यूचे कणभुक् मुनि ॥७०॥
चक्षुर्ग्राह्य भवेद रूप गुणत्वे सति सप्तधा ।
शुक्लादिजलतेजोऽणुनिष्ठ नित्य क्षमाऽणुषु ॥७१॥
अग्निसयोगज हेतुरूपज द्व्यणुकादिषु ।
आश्रयस्य विनाशेन विनाश्यऽग्निकुनीरगम् ॥७२॥
रसो रसनमेय स्याद गुणत्वे सति षड्विध ।
कटवादि क्षितितोयस्थो रूपवन्नित्यतादय ॥७३॥
घ्राणग्राह्यो भवेद गन्धो गुणत्वे सति स द्विधा ।
सुरभ्यादिरनित्यश्च क्षितिस्थोऽन्यद् रसादिवत् ॥७४॥
स्पर्श स्पर्शनवेद्य स्याद् गुणत्वे सति स त्रिधा ।
शीतादिजलभूम्यग्निवायुस्थोऽन्यद रसादिवत् ॥७५॥
रूपादे पाकजोत्पत्तिश्चतुष्कस्येदृशी मता ।
आपाकक्षिप्तकुम्भाणुष्वग्निघातात क्रियाजनि ॥७६॥

(६९) १ इच्छा ।
(७१) १ सत्यादिष्वति याप्ति यदासाथ क्षमात्रेति मात्रपदमभ्यूहनीयम । एव स्पर्शेऽपि ातव्यम ।

(७२) १ परमाण्वादिष्वरूपजम ।
(७६) १ पथिवीनिष्टस्य । २ घटा द्यामद्र यपाकार्थं कुलालकृता गर्त्तविशेष आपाक मित्युच्यत । ३ अग्निसयोगात । ४ क्रियोत्पत्ति ।

ततो विभाग सयोग नाश कार्य[1]क्षयस्तत ।
ततोऽग्नियोगादौष्ण्याढ्यो रूपादे[2] प्रक्षये सति ॥७८॥
अन्यस्मात पाकजोत्पत्तिस्ततोऽण्वाऽऽत्मयुजे[1] क्रिया ।
अणुषु स्यात ततो योग कार्याणामुदयस्तत ॥७९॥
पिठर[1]स्यव पक्तिश्चेद तरग्नेरभावत ।
पाको न स्यादत पीलु[2]पाकवागेव सु दरी ॥८०॥
सख्यकादधियो हेतुनन्व[1]भेदत एकधी ।
भेदाद् द्वित्वादिधीरस्तु नेदशीय कणादगी ॥८१॥
स्वरूप वस्तुनो भेदाभेदाविष्टौ तथा सति ।
घटस्वरूपाभेदेन कथ स्यात पट[1] एकधी ॥८२॥
परस्पर स्वरूपाणामनुवृत्तेरभावत ।
भेदस्य चै[1]करूपत्वाद विशेषस्त्र्यादिको न ते ॥८३॥
अत सख्या पृथक् सा च द्व्यैक[1]द्रव्यका तथा ।
अनेकद्रव्यका चाऽऽद्या त्वेकतामतिगोचरा ॥८४॥
यावद्द्रव्या द्वितीया च द्वित्वाद्या सा त्वनित्यका ।
अपेक्षा[1]बुद्धिनाशेनाश्रयना[2]शाच्च नश्यति ॥८५॥

(७८) १ द्विण (द्व्यणु) कस्य क्षय । २ परिमाणनिष्ठस्य ।

(७९) १ परमाण्वदृष्टवदात्मसयोगात ।

(८०) १ पिण्डस्य । पिठरस्यव पक्तिरिति भट्टा ।

२ पीलूना परमाणूना पाक इति या वाक सा सुन्दरी शोभिष्टत्यथ ।

(८१) १ अभेदेति ब धन एक व्यवहार भेद निब धनश्च द्वित्वादि यवहार इति भूषण कार आशकत ।

(८२) १ वस्त्रे ।

(८३) १—उभयकरूपत्वात ।

(८४) १—एक द्रव्य आश्रयो यस्या सा ।

(८६) १— २—

चक्षुषा घटसयाग	—१	एकत्वाधारावयव कम	—१	एकत्वसामान्यज्ञान	—१
तन्निष्ठकत्वसामान्यदर्शन	—२	ततो विभाग	—२	अपेक्षाबुद्ध्युत्पत्ति	—२
अपेक्षाबुद्धेरुत्पत्ति	—३	द्रव्यारम्भकसयोगनाश	—३	द्वित्वोत्पत्ति	—३
द्वित्वगुणोत्पत्ति	—४	ततो द्रव्यनाश	—४	द्वित्वसामान्यज्ञानम्	—४

परिमाण वितस्त्यादिमानविज्ञानकारणम ।
चतुर्द्धा च महद्दीर्घह्रस्वाणुत्वादिभेदत ॥८६॥
नित्यानित्यभिदा द्वेधा सवमत्य पराणुषु ।
नित्य स्याद द्व्यणुकेऽनित्य महादतमादिषु ध्रुवम्[२] ॥८७॥
अध्रुव[१] त्र्यणुकादौ स्याद् दीघताह्रस्वते पुन ।
अणुत्वमहदेकाथनिष्ठे तादग्विधे तथा ॥८८॥
मानप्र[१]वयसख्याभिश्चतुर्विधमनित्यकम् ।
जायते द्व्यणुके[२]ऽणुत्वह्रस्वत्वे अणुसख्यया ॥८९॥
द्वित्वाश्रयासमारब्धे[१] स्वकार्ये[२] त्र्यणुकस्थितात ।
महद्दीर्घात[३] महद्दीर्घे जायेते शिथिलो युजि ॥९०॥
प्रचय[१] स्यात ततस्तूलपिण्डद्वितयनिर्मिते ।
तूलपिण्डे[२] महद्दीर्घे जायेते इति मानदिक्[३] ॥९१॥
पृथक्त्वमन्यताबुद्धे कारणत्वेन सम्मतम् ।
स्वरूपभेद एव स्यात पथकत्व चेद घट पट ॥९२॥
इत्येव स्यात पट कुम्भादिति वाड नव युज्यते ।
अन्योन्याभाव एव स्यादिति चेत्तर्हि पञ्चमी ॥९३॥

.त्वगण सामान्यज्ञान —५ पेक्षाबुद्धविनाश —६ पक्षाबद्धनाशाद द्वित्व गुणनाश —७ वमनेन प्रकारण द्वित्वगणस्याप ाबद्धविनाशाद विनाश ॥६०॥	ततो द्वित्वगणनाश —५	अपक्षाबद्धनाश —५ एवमाश्रयनाशाद द्वित्वगुणनाश ।

(८७) १ अणत्वमहत्परिमाण यस्मिन्नर्थे त्तत तत्रास्मा न कस्मि नर्थे एव दीघताह्रस्वते पि वर्त्तेते। त च तादगविध भवत । अयमभि ाय —यथा अणत्वमहत्परिमाण नित्यनिष्ठे त्य अनित्यनिष्ठ अनित्य तथत्यथ ।
२ नित्यम् ।
(८८) १ अनित्यम ।

(८९) १ असमवायिकारणभताभि । २ द्व्यणुकनिष्ठाणपरिमाणस्य निष्ठाद्वित्व सख्याऽसमवायि कारणम
(९०) १ वर्त्ततेति शष । २ चतुरणुक ३ असमवायिकारणभतात । ४ सयोग ।
(९१) १ प्रचयात । २ अधिकरणे । ३ परिमाणमार्ग ।

घटात्पट इति व्यक्तु घटो न पट इत्यद ।
वचो युक्त तत सिद्ध पृथक्त्व तदपि द्विधा ॥९४॥
सख्यावत्तस्य नाशादिसख्ययैवोपवर्णितम ।
प्राप्तिरप्राप्तयोर्या हि स सयोग समीरित ॥९५॥

(९५)—

(अ) १ एकद्र यकमनकद्र यक चति ।

(आ) एकपथक्त्व नित्यनिष्ठ नित्यमनित्य निष्ठ अनित्य । अनेकपथकत्वमनित्यमव ।

२ त तुसयोगस्य स्वकार्येण सह सयोग कार्येण पटन सह एकस्मि नथ त तलक्षण वत्ति ।

(अ) ३ अवयवे कम्मोत्प न यदावयवा तरा भाग करोति तदाऽपेक्षाबद्धेरत्पत्ति । इत्यक काल । यदा द्र यारम्भकसयोगनाश तदा परत्वानु त्पद्यत इत्येक काल । द्र यविनाश सामा य बुद्धभ्यश्चोत्पत्तिरित्येक काल । द्र यविनाशा च्च परत्वस्य विनाश ॥१॥

(आ) असमवायिकारणविनाशात कथम । अपेक्षाबुद्धि , परत्वाधार च कर्मेत्यक काल । ततो दिकपिडविभाग परत्वस्य चोत्पत्तिरित्यक काल । सामा यबुद्धरुत्पत्ति दिकपिडसयोगस्य च विनाश ॥२॥

(इ) अपक्षाबुद्धिविनाशात्कथम । उत्प न परत्वे सामा यबुद्धरुत्पत्ति अपेक्षाबुद्धविनत्ता (विनाशता) गणबुद्धेरुत्पद्यमानतेत्यक काल । उपेक्षाबद्धिविनाश गुणबद्धरुत्पत्ति गणस्य विनाशात द्र यबुद्धिरुत्पद्यतेत्यक काल । ततो द्रव्यबुद्धिरुत्पद्यत गुणस्य च विनाश ॥३॥

(ई) समवाय्यसमवायिनिमित्तकारणाना विनाशादपि कथम । अपक्षाबद्धरुत्पत्ति पिडाव यवऽपि कर्मेत्यक काल । ततश्चावयवान्तरावि परत्वस्य चोत्पत्ति पिडऽपि कम इत्येक काल । ततश्च द्रव्यारम्भसयोगनाश दिकपिडसयोग सामा यबद्धेश्चोत्पत्ति अपेक्षाब नाशता इत्येक काल । तत पिडविनाशाद्दिकपिडसयोगनाश । अपेक्षाबद्धविनाश । एतत्स त्र यगपत त्रयाणा समवाय्यसमवायिनिमित्ताना विनाशात्परत्वस्य विनाश ॥४॥

(उ) द्र यापक्षाबुद्धयुगपद्विनाशादपि कथम । पर वाधारेऽवयव कम अपक्षाबद्धेरुत्पत्तिरित्यक काल । ततश्च विभाग परत्वस्य चोत्पत्तिरित्यक काल । ततश्च द्र यारम्भकसयोगनाश सामा य बुद्धेरुत्पत्ति अपक्षाबद्धश्च विनाश इत्यक काल । ततश्च द्र यविनाश अपक्षाबद्धश्च नाश इत्यक कालस्ततो द्र यबद्धयोर्विनाशात्परत्वस्य विनाश ॥५

(ऊ) द्रव्यसयोगविनाशादपि कथम । परत्वा धारावयव कम इत्यक काल । ततश्च विभाग , पिड कम चोत्पद्यत अपेक्षाबुद्धेश्चोत्पत्तिरित्यक काल । ततश्च परत्वस्योत्पत्ति द्र यारम्भक सयोगनाश दिकपिडविभाग इत्यक काल । ततश्च सामा यबद्धरुत्पत्ति पिडविनाश दिक् पिडसयोगविनाशश्चत्यक काल ततो गुणबुद्धि समकाल पिडसयागयोर्विनाशात परत्वस्य विनाश इति ॥६॥

(ए) सयोगापक्षा बुद्धयोयु गपद्विनाशादपि कथ । परत्वोत्पत्ति परत्वाधार कम चत्येक काल । ततश्च परत्वसामा यज्ञानम दिक्पिड- विभागश्च यक दिकपिण्डसयागविनाशश्चत्यक काल । तत सयोगापेक्षाबुद्धयोर्विनाशात्परत्वस्य विनाश ।

अनन प्रकारण नाश परत्वस्य सप्तविधो ज्ञात य ॥ इतरत्सुगम ॥७॥

सयुक्तबुद्धिगम्य स्यात त्रिविध स च वर्णित ।
गुणद्रव्यक्रियाहेतुराद्यश्चित्तात्मनोमत ॥९६॥
द्वितीयोऽवयवाना च ततीयो घातनोदने ।
पुनस्त्रिधोभयैकस्थ-कमसयोगजत्वत ॥९७॥
आद्यो महिषयोरन्य शुकमार्कन्दयो पर ।
शाखालतायुजे शाखिलतायोग प्रकीर्त्तित ॥९८॥
चतुर्द्धाऽन्त्योऽपि बहुभिद् द्वाभ्यामेकत एव च ।
योगौ द्वौ चैकत स्यातामाद्यस्तन्तुभिरीरित ॥९९॥
तुरीयोगस्तुरीवेलयोगोऽन्यस्तन्तुकद्वये ।
वियद्योगद्वयाद् व्योमद्वितन्तुकयुजिभवेत ॥१००॥
ततीयस्तूक्त एवाऽऽदावन्त्योऽण्वो पार्थिवाप्ययो ।
सयोगे सति तत्तुल्यजात्यणुद्वययोगत ॥१०१॥
द्व्यणुकद्वितये जाते पार्थिवद्व्यणुकस्य हि ।
आप्याणुना भवेद योग आप्यस्यापीतराऽणुना ॥१०२॥
नाशस्त्वाश्रयनाशेन विभागाद् द्वकनिष्ठत ।
सयोगस्याश्रितस्य स्यादित्यल विस्तरेण न ॥१०३॥
गुण सयोगहन्ता स्याद विभाग प्रविभक्तधी ।
तत्र प्रमाण नन्वस्तु योगनाशे विभागधी । १०४॥
नैतदाश्रयनाशेन योगनाशोऽपि नव हि ।
विभागधीरत सिद्धो विभाग स त्रिधा मत ॥१०५॥

(९६) १ गुणादित्रिकस्यासमवायिकारण।
(९७) १ उभयश्चव उभयौ कौ तयो ल इति उभसकस्थ ते च ते कम्मणी च कस्थकमणी, ल च सयोग च उभयकस्थकम ।।स्तभ्योऽसमवायिकारणभ्यो जातस्तस्य तत्त्व तस्मात ॥

(९८) १ आश्रय ।
(९९) १ सयोगज । २ सयोग ।
(१०१) १ तल्या जातियस्य तत्तुल्य जातिश्च तत अणुद्वय च तुल्येस्यादि, ताभ्यां तुल्यजात्यणुद्वय तस्य योगस्तस्मात ।

योगवत् पूर्वकौ तूक्तौ तद्वदेव तृतीयक ।
हेतुमात्रविभागोत्थो हेत्वहेतुविभागज ॥१०६॥
इति द्वेधाऽन्तिम प्राग्वदाद्यस्त तोर्विभागत ।
त त्वन्तरात तदाऽऽकाशदेशतो भाग[1] इरित ॥१०७॥
नाशस्तूत्तरसयोगाश्रयनाशत इष्यते ।
पराऽपरधियोर्हेतू परताऽपरते मते ॥१०८॥
तनुयोगाल्पभूयस्त्वनिमित्ताऽन्नु परादिधी ।
द्रष्टरि व्यभिचारित्वान्नैतद्युक्त द्विधा च ते ॥१०९॥
दिक्काला[1]कृततातस्तन्नाश सप्तविधो मत ।
हेतु[2]त्रयस्य प्रत्येक युगपच्च विनाशत ॥११०॥
द्रव्यापेक्षाधियोर्नाशात समवाय्य[1]ययोस्तथा ।
निमित्तासमवायिस्थ[2]नाशाश्चेत्येष सग्रह ॥१११॥
कार्य यदाश्रय तत्स्यात समवायीतरत्पुन ।
तत्प्रत्यासत्तिभाक् सा च द्वेधैका हेतुसयुजे ॥११२॥
स्वकार्येण सहैकस्मिन्नर्थे वृत्ति परा पुन ।
हे[1]तुरूपस्य तत्का[2]यकारणे[3]न सह स्थिति ॥११३॥
एकस्मिन्निति सप्रोक्त ताभ्याम यन्निमित्तकम ।
परताऽपरते प्रोक्ते धिषणा प्रोच्यतेऽधुना ॥११४॥
बुद्धिर्ज्ञान प्रमाण तु स्यादनुव्यवसायधी ।
जानामीति द्विधा सा च नित्यानित्यविभेदत ॥११५॥

(१०३) १ एकार्थसमवेतादित्यर्थ ।

(१०७) १ द्वितत कपटदश्यविशिष्टाकाशात ।

(११०) १ दिक्कालकृतत्वनत्यथ ।
२ समवायादिकारणत्रयस्य ।

(१११) १ असमवायिनो ।
२ तन्तरूपस्य ।

(११३) १ तच्छदेन हेतरूप तस्य तत्कायपटनिष्ठ रूप तस्य कारणन पटन ।

नित्येश्वरगता तस्यानित्यता चामुतो[1] मता ।
घटोऽयमेतज्जनकानित्यज्ञानान्यबुद्धित ॥११६॥
जन्य कार्यत्वतो यद्वत पटादिरिति मानत[1] ।
अनित्या जीवसस्था[2] स्याद बुद्धि सा द्विविधा मता ॥[1]११७॥
विद्याऽविद्या च तत्रान्त्या चतुर्द्धा समुदीरिता ।
सशीतिपर्ययस्वप्नानवसायविभेदत ॥११८॥
सशयोऽनेकपक्षाणामवसायो[1] विकल्पत ।
स्थाणु स्यात्पुरुषो वेति स्याद यत्रा यशेमुषी ॥११९॥
विपर्ययो यथा रज्जौ सर्पधीनन्[1] दर्शनात् ।
स्मतेर्भेदाग्रहादेव व्यवहारो न तच्छुभम ॥१२०॥
वस्तुस्वरूपभेदस्य वस्तुनोग्रहणे कथम् ।
अग्रहो गुरुराद्धा[1] ते भवे नाप्यसत[2] प्रथा[3] ॥१२१॥
रज्जावहेर्वियत्पुष्प न हि क्वापि प्रतीयते ।
नासत्ख्यातिरतो नाऽऽत्मख्यातिरप्यत्र[1] चातुरीम ॥१२२॥
धत्ते यद्यपि विज्ञानाकार आशीविषो मत ।
बाह्यस्थ त्वान्तर नव नाप्यऽनिर्वचनीयता[1] ॥१२३॥
असत्सदुभयान्यस्मिन नर्थे मानस्य हानित ।
अतो[1] वल्मीकदष्टोऽही रज्जावाभाति दोषत ॥१२४॥

(११६) १ वक्ष्यमाणात् प्रमाणात ।
(११७) १ प्रमाणात २ निष्ठा।
(११९) १ कोटिद्वयस्य ।
(१२०) १ अख्यातिवादी प्रभाकर आपपति ।
(१२१) १ प्रभाकर ।
२ असतख्यातिवादिन बौद्ध निराचष्ट।
३ ज्ञानम ।
(१२२) १ आत्मख्यातिवादी च बाद्धभद।
(१२३) १ अनिवचनीयख्यातिवादिनो वदान्तिन ।
(१२४) १ अ यथाख्यातिवादी तार्किक परिहरति ।

इति चारु वचो युवत सिद्ध स्वप्नस्तु लोकत ।
स्यादनध्यवसायो न किं सञ्ज्ञो वक्ष इत्ययम ॥१२५॥
विद्याऽपि स्याच्चतुर्भेदा प्रत्यक्षमनुमानकम ।
स्मतिरार्षमिति प्राहुरपरोक्षा यथार्थधी ॥१२६॥
प्रत्यक्ष द्विविध तच्च योग्यऽयोगिविभागत ।
धर्मोऽध्यक्ष[1] प्रमेयत्वात् केषाचित्स्याद् घटादिवत् ॥२७॥
योगिसिद्धिरिति द्वेधे[1]तरदाद्यमकल्पकम्[2] ।
निर्विशे[1]षार्थधीर्यत सविकल्पकमीरितम ॥१२८॥
शब्दोल्ले[1]खभव तत्र[2] षोढा सबन्धमूचिरे ।
जनक ज्ञा[1]तशीषण्या अत्रैषा प्रक्रियोच्यते ॥१२९॥
योगाद् द्रव्यग्रहो युक्तसमवायाद गुणादिधी ।
सयुक्तसमवेतस्थसमवायाद गुणत्वधी ॥१३०॥
शब्दधी समवायात स्याच्छब्दता समवेतगात् ।
समवायात प्रतीयेत विशेषणविशेष्यता ॥१३१॥
एतत्सब धर्वन्निष्ठाभावधीहेतुरिष्यते ।
अविनाभा[1]वज ज्ञानमनुमान प्रचक्षते[2] ॥१३२॥
दृष्टसामान्यतो दृष्टभेदाद् द्वेधा तदीरितम ।
दृष्टमध्यक्षयोग्यार्थग्राहि धूमाद यथाग्निधी ॥१३३॥
स्वभावविप्रकृष्टार्थभासक चेतरद यथा ।
चक्षुर्वी रूपधीतस्तत परार्थस्वार्थभेदत ॥१३४॥

(१२७) १ प्रत्यश्च ।

(१२८) १ अयोगिप्रत्यक्ष निर्विकल्प सविकल्पकभदन द्विधा भवतीति। २ निर्विकल्पम्। ३ विशषरहितार्थधी ।

(१२९) १ उच्चार २ सविकल्पक ३ तकविद ।

(१३२) १ अविनाभावोपतधूमज ज्ञानम २ कवलीकारा ।

पुनर्द्विधोपदेशेन हीनमन्त्यमथाऽग्रिमम् ।
तद्युक्त स च पञ्चाश वाक्यमिष्ट प्रतिज्ञया ॥१३५॥
सह हेतु सदृष्टान्ते उपनीत्युपसहृतौ ।
इत्यशा पक्षधर्मागाद्या सिसाधयिषया यथा ॥१३६॥
अग्निमान् गिरिरित्यन्यो धूमवत्त्वादितीदृश ।
साधनव्यापका लिङ्गधर्मागिष्ट स त्रिधा मत ॥१३७॥
अन्वयव्यतिरेकी च व्यतिरेक्यन्वयी तथा ।
पञ्चरूपो भवेदाद्य पक्षधर्मत्वमादिमम ॥१३८॥
रूपसत्त्व सपक्षेऽन्यद् विपक्षापेतताऽपरम ।
अबाध्यता तु प्रत्यर्थिपक्षता चेति पञ्चमम ॥१३९॥
स्याद व्याप्यवृत्तिता हेतो पक्ष आद्य द्वितीयकम ।
सपक्षेऽल्पे समग्रे वा वत्तिर्व्यावृत्तिरिष्यते ॥१४०॥
विपक्षात्सकलादन्यच्चतुर्थ त्वविरोधिनि ।
प्रामाण्येन प्रतिज्ञासे (स्ये) साध्यतद्विपरीतयो ॥१४१॥
साधनस्य त्रिरूपत्व पञ्चम रूपमीरितम ।
विपक्षे बाधकस्तर्कोऽप्यनुमानाङ्गमिष्यते ॥१४२॥
उपाधेर्घातकत्वेन व्यभिचारस्य चाध्रुवम् ।
साधनाव्यापक साध्य समव्याप्ति समीरित ॥१४३॥
उपाधिरग्नीषोमीयहिसाऽधर्मत्वसाधने ।

(१३५) १ स्वार्थ २ परार्थ ।
(१३६) १ उपनयनिगमने ।
(१३९) १ विवक्षता २ असत्प्रतिपक्षता ।
(१४३) १ अनैकान्तिकस्य ।
२ साधनाव्यापकउपाधिरित्युक्त अनित्य शब्द कृतकत्वादित्यत्र सावयवत्व उपाधि स्यात । तदर्थ साध्यसमव्याप्तिरिति पदम । साध्यसमव्याप्तिरुपाधिरित्युक्ते तस्मिन्नेवानुमाने कार्यत्वमप्युपाधि स्यात । तदर्थमुक्त साधनाव्यापकपदम । तद यत्वोपाधिर्यदासाथ पमसदम ॥
(१४४) १ वैधी हिंसा ।

हिंसा हेतोर्निषिद्धत्वमुपाधिर्यादृगिष्यते ॥१४४॥
तर्को युक्तिरिह प्रोक्तस्तर्कतत्त्वविचक्षणै । [1]
यथा यद्यग्न्यभाव स्याद धूमाभावोऽपि ते भवेत् ॥१४५॥
इत्येकादशधा चासावन्तर्वाणिभिरीरित ।
क्षितितोयादिजन्य स्यात कर्ता कार्यत्वहेतुत ॥१४६॥
यथा घटादिनन्वस्तु कार्यता कर्तृ जन्यता ।
माऽस्तु को बाधकस्तर्क इति षष्टेऽभिधीयते ॥१४७॥
व्याघातात्माश्रयान्योन्याश्रयता चक्रकास्थिती । [1]
प्रतिबदी च कल्पनालाघव गौरव तथा ॥१४८॥ [2] [3]
उत्सर्गश्चापवादश्च वैयर्थ्य चान्तिम मतम । [1]
अकर्तृ ताकार्यतयोर्व्याघात स्यात समुच्चये ॥१४९॥
हिमाग्न्योरिव नन्वस्तु तत्र नात्रेतिचेद् वद । [1]
किं विशेषोऽस्ति नो वाऽत्र नास्ति चेन्मूकता व्रज ॥१५०॥
यद्यस्ति किं स एव स्यान्मानमात्मन्युतान्यक । [1]
स चेदाऽऽत्माश्रयत्व स्यादन्यश्चेततत्र कि भवेत ॥१५१॥
पूर्वो मान तृतीयो वा पूर्वश्चेत स्याद ध्रुव तदा ।
अन्योन्याश्रयताऽथ स्यात तृतीयश्चक्रक भवेत ॥१५२॥
तृतीये तु चतुर्थश्चेदनवस्थवमासजेत ।
चतुर्थस्तु प्रमाण चेदाद्य कि नवमीदशी ॥१५३॥
प्रतिबदीत्यकर्तृत्वे कार्यत्व न सेत्स्यति ।
सिद्धोऽत इश एकश्च कल्पनालाघवाद भवेत ॥१५४॥

(१४६) १ शास्त्रविदभि ।
(१४८) १ चक्रकाश्रयानवस्थे । २ कल्पनालाघवम ३ कल्पना गौरवम् ।
(१४९) १ शरीरषु अपवादित्वात अपवादस्तर्क तदपतत्वात ।
(१५०) १ तत्र हिमाग्न्यार्विषयव्याघातोऽस्तु ।
(१५१) १ तस्मिन विषये ।

कल्पनागौरव तु स्याद् बहुताया परेशितु ।
नन्वदेहस्य कतृत्वमेव नास्ति जगत्कृति ॥१५५॥
कुत स्यादिति चेत पश्य कतृत्व चेतनत्वत ।
उत्सर्गात्[1] सभवेत् कि न निश्चयोऽस्तीति चेच्छृणु ॥१५६॥
मुक्तात्मस्वपवादित्वादस्तु मान परेश्वरे ।
तन्माने कि प्रमाण स्यादिति चेन्मौनमुत्तरम ॥१५७॥
वयात्यसज्ञ नह्यस्य प्रश्नस्यान्तोऽवसीयते[1] ।
इत्थ तर्कास्तर्कदोषा[2] सप्रोक्तास्तर्ककर्कशै ॥१५८॥
आपाद्या सिद्धिराद्य स्याद यथा कर्त्ता यदीश्वर ।
रागी स्यादित्यसिद्धिश्चापादकस्य द्वितीयक ॥१५९॥
यथा यदीशो देही[1] स्यात कर्त्ता स्यात् तदितीदृश ।
उभयाऽसिद्धता यादृक देहीशश्चेत तदा भवेत् ॥१६०॥
धर्म्मादिभागिति प्रोक्तो मूलशैथिल्यमुत्तर ।
यथा यदीश कर्त्ता स्याद् विप्र स्यात् तह्यऽसाविति ॥१६१॥
मिथस्तर्कविरोधस्तु पञ्चमो यद्वदीश्वर ।
कर्त्ता यदि भवेद् रागी तर्हिस्यादित्युदाहृते[1] ॥१६२॥
कर्त्ता चेन्न भवेत तर्हि जगदाऽऽकस्मिक भवेत् ।
तर्कद्वयविरोधोऽयमिष्टापत्ति पुन पुन ॥१६३॥
यथा यदीश्वर कर्त्ता स्यात तर्हि ज्ञानवानिति ।
इश्वरश्चेतनश्चेत्स्यादनित्यज्ञानवान् भवेत ॥१६४॥

(१५६) १ सामा यविषे ।
(१५८) १ ज्ञान न प्राप्त । २ आपाद्या द्ध १ आपादका सिद्धिः । २ उभया द्ध । ३ मूलशथिल्य । ४ तर्कविरोध । ५ इष्टापत्ति । ६ विपययापयवसारि ७ इति सप्त तर्का ।
(१६०) १ दहित्वमापादकम् ।
(१६२) १ इत्यक्ते ।

तथा तु न भवत्येव, तस्मान्नो चेतनोऽप्यसौ।
इति वक्तुमशक्यत्वादित्यऽपर्यवसायिता ॥१६५॥
विपर्ययस्य दोषोऽयमुक्तस्तर्कस्य सप्तम ।
सोऽयं तर्कोऽनुमानाङ्गमित्यलं बहुनाऽमुना ॥१६६॥
पक्षव्यापी सपक्षस्थोऽविद्यमानविपक्षक ।
स्यात्केवलान्वयी प्रोक्त स च योगिप्रसाधने[१] ॥१६७॥
पक्षव्यापी सपक्षेण हीनोऽपतो[१] विपक्षत ।
केवलव्यतिरेकी स्याद् यथा कार्यमशेषकम ॥१६८॥
सर्ववित्कर्तृजन्यं स्यात् कादाचित्कत्वतो नयत् ।
एवं तदेव नव स्याद् यथाकार्यमितीदृशम ॥१६९॥
हेतुरन्यत्वत[१] सर्वो हेत्वाभास स षड्विध ।
असिद्धश्च विरुद्धश्च स्यादनैकान्तिकस्तथा ॥१७०॥
अनध्यवसित कालातीत प्रकरणे सम ।
पक्षेऽनिश्चितवृत्ति स्यादाऽऽद्यो यादृग[१]नित्यक ॥१७१॥
चाक्षुषत्वेन शब्द स्यादिति पक्षविपक्षग ।
विरुद्धो नित्यक शब्द कार्यत्वादितिवत्पर ॥१७२॥
पक्षत्रयस्थो यद्वत्स्यात प्रमेयत्वादनित्यक ।
शब्द इत्यपरो हीनसपक्षकविपक्षक ॥१७३॥
पक्षव्यापी यथा सर्वमनित्यं सत्त्वतो मतम् ॥
प्रमाणबाधिते पक्षे वर्तमान उदीरित ॥१७४॥
कालातीतो यथाऽनुष्ण पदार्थत्वाद् हुताशन ।

(१६७) १ धर्म कस्यचित्प्रत्यक्ष प्रमेयत्वात घटादिवत।

(१६८) १ ग्यावृतत्त ।

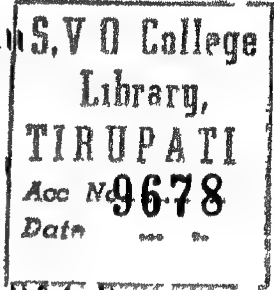
(१७०) १ पूर्वोक्तलक्षणकृता द्व तुत्रयात।

(१७१) १ यथा।

स्वपक्षे परपक्षे च त्रिरूपोऽन्त्य समीरित ॥१७५॥
सपक्षपक्षयोरन्यतरत्वात् स्यादनित्यक ।
शब्द इत्यादिवत्तेषा भेदा सन्ति सहस्रश ॥१७६॥
सम्यगदृष्टान्तवागिष्टमुदाहरणमत्र च ।
साधर्म्य वैधर्म्यभिदा[1] द्विविध्य सम्प्रतीयते ॥१७७॥
यद्यद् धूमवदग्न्याढ्य तत्तद्यद्वन्महानसम ।
इत्याद्य न यदेव स्यान्न तदेव यथा ह्रद ॥१७८॥
इत्यन्त्यमेतदाभासा[1] मनो मूर्तत्वत क्षयि ।
अणुवत् कमवद व्योमव नृश्रृगवदित्यऽमी ॥१७९॥
स्यु साध्यसाधनद्वन्द्वाश्रयशून्या[1] परौ पुन ।
वागदोषो व्याप्त्यनुवित स्यादेको घटवदित्ययम् ॥१८०॥
व्याप्तेर्विपर्ययोक्ति स्यादपरो यदनित्यकम् ।
तन्मूत दृष्टमित्येव वैधर्म्येऽप्यूह्यमीदृशम्[1] ॥१८१॥
दृष्टान्तस्योपमानेन पक्षे व्याप्त्यभिधायि यत् ।
वचन सोपनीति स्यात् सा द्वेधा सम्प्रकीर्तिता ॥१८२॥
उदाहरणवद धूमवाश्चायमिति साऽऽदिमा ।
अधूमवान् गिरिर्नेति द्वितीयोक्ता विशारदै ॥१८३॥
सहेतुका प्रतिज्ञाया वाक स्यान्निगमनाऽभिधा ।
अतोऽग्निमाने च गिरिरित्युक्तमनुमानकम् ॥१८४॥
अन्तर्भावोऽनुमाने स्याच्छब्दस्य ज्ञातसगति ।
यत प्रत्याय[2]यत्यऽथ शब्दो नाज्ञातसगति ॥१८५॥

(१७७) १ भदन ।
(१७९) १ उदाहरणाभास। ।
(१८०) विकला ।

(१८१) १ एवमेव साधनाव्यावृत्त साध्या यावत्त उभय यावत्त आश्रयविकल । वाग्दोषद्वयोपेत चोदाहरणम । पूर्वानिमान दृष्टा तष्वेव क्रमेण ऊह्यम।



उपमान[१] तु गोतुल्यो गवय स्यादितीदृशम ।
तच्च शब्दो वने दृष्टे[२] गवयेऽनेन तुल्यका ॥१८६॥
मद्गौरित्युपमान चे नैतदेवा स्मतियत ।
श्रुतातिदेशवाक्यस्य[१] वने[२] या गवये[३] मति ॥१८७॥
न सोपमानमध्यक्षमेव तत् सविकल्पकम ।
बहिर्भावाऽविनाभूतो गृहेऽभावोऽवधारित ॥१८८॥
जीवतोऽतोऽनुमान स्यादर्थापत्तिरपि ध्रुवम् ।
सभवेदयुत[१] लक्ष इत्यय[२] सभवोऽपि न ॥१८९॥
अनुमान यतो लक्षेऽयुतव्याप्ति प्रतीयते ।
ग्राह्य प्रत्यक्षतोऽभावो नातोऽभावप्रमाणता ॥१९०॥
अज्ञातकर्तृक वादपारपर्यमुदाहृतम् ।
ऐतिह्य तच्च शब्देऽन्तर्भूतमित्यनुमानकम् ॥१९१॥
प्रत्यक्षमिति माने द्वे कणादेनोपवर्णिते ।
प्रामाण्य च तयोर्नैव स्वत[१]स्तन्मान[२]हानित ॥१९२॥
धीहेतुमात्रजन्यस्थ प्रामाण्य द्वित्ववद भवेत् ।
दोषोऽनुत्पाद्यमानत्वे सति ज्ञानाश्रयत्वत ॥१९३॥
इति चेदप्रमाणत्वेऽप्येव वक्तु प्रशक्यते ।
तस्मात्[१] प्रमाण धीहे[२]तुव्यतिरिक्तात्महेतुकम् ॥१९४॥

(१८५) १ ज्ञातसबध आगम । अनुमानमपि ज्ञातसबधमवाथ ज्ञापयति ।

२ ज्ञापयति ।

(१८६) १ चिरतन नयायिकाभिमतमुपमान शब्द अन्तर्भावयति । २ मीमासकाभिमतमुपमानमाशङ्कते ।

(१८७) १ श्रुत अतिदशवाक्य गोसदृशो गवय इति वाक्य येन स तस्य ।

२ इदानीतननयायिकाभिमतमपमान प्रत्यक्ष अन्तर्भावयति ।

३ अय गवय इति मति ।

(१८९) १ दशसहस्र नाम । २ वनक्र विषये(?) ।

(१९२) १ स्वतस्त्वप्रमाणाभावात्

२ स्वत प्रामाण्यवादिनो मीमासका तान्निराचष्टे ।

धीविशेषत्वतो यादगमानमिति सुन्दरम् ।
अबाध्या[1]ऽनवबुद्धाथबोधकत्व[2] प्रमाणता ॥१९५॥
तच्च वस्तुस्वभाव स्या न शक्ति[1]र्मानहानित ।
[2]दाहस्फोटादिकार्याणामन्यथाऽनुपपत्तिता ॥१९६॥
शक्ति स्यादिति चेन्नैव कायमग्नेभविष्यति ।
कि शक्त्या ननु मन्त्रादौ सति काय न दृश्यते ॥१९७॥
सत्यप्यग्नौ न मन्त्राद्यभावेनान्वितवह्निना ।
कायसिद्धेरत शक्तिर्नाङ्गीकार्येति सग्रह ॥१९८॥
ज्ञान सस्कारमात्रोत्थ स्मति सा[1] चाप्रमा[2] मता ।
[1]सशयादिवदध्यक्षानुमानान्यत्वतस्तथा ॥१९९॥
इच्छा द्वेषाऽनुमानादि कायमस्या प्रकीर्त्तितम् ।
आर्ष तु प्रातिभ ज्ञान मुनीना तपसेरितम् ॥२००॥
बालाना च यथा कन्या ब्रूते प्रात पिता मम ।
आयास्यति मनो मेऽत्र प्रमाणमिति वर्णिता[1] ॥२०१॥
बुद्धि सविभवा[1] सम्यग व्याख्यास्यामोऽधुना सुखम् ।
निरुपाधिय इच्छाया विषयस्तत् सुख मतम् ॥२०२॥
धर्मो हेतुमनो मान काय माऽऽस्यप्रसन्नता ।
द्वेषस्य गोचरो दुख निरुपाधिनिमित्तकम् ॥२०३॥
अधर्मोऽत्र मनो मान कायमास्यविषण्णता ।

(१९४) १ स्वमतमपसहरति—परत माणवादी तस्मादिति । २ धियो हेतव न्निकर्षा य धीहेत यतिरिक्तब ध्य यवहार क्षणहेतुकत्वदृष्टा त ज्ञात यम । पक्षे च–धी तुव्यतिरिक्ता बाध्य यवहारस्वरूपहेतकत्व ात यम ।

(१९५) १ अज्ञाताथ ।

२ बोधकत्व प्रमाणस्वरूपमिति तार्किका ।

(१९६) १ बोधकत्व पथक पदाथशक्ति-रिति मीमासका ।

२ दाहस्फाटादिकार्याणि शक्तिम तरण नपपद्यमानानि वह्नौ शक्ति गमयन्ति । इत्यर्थापत्ति प्रमाणम ।

(१९९) १ पक्ष । २ साध्यम । ३ दष्टान्त । ४ साधनम् ।

(२०२) १ सविस्तरा ।

इच्छा स्यात् प्रार्थना सा च द्वेधा नित्यादिभेदतः ॥२०४॥
नित्यैशी जीवगाऽनित्या कार्यं चास्याः प्रयत्नकः ।
रोषो द्वेषो भवेत् कार्यमस्य प्रोक्तं निवर्त्तनम् ॥२०५॥
द्रोहक्रोधादयो भेदा द्वेषस्यैव समीरिताः ।
उद्योगः[1] स्यात् प्रयत्नोऽसौ द्वेधा नित्यादिभेदतः ॥२०६॥
नित्य ऐशः परो जैवः सोऽपि द्वेधाऽग्रिमस्तु नः ।
इच्छादि[1]पूर्वकोऽन्योऽपि प्राणधारण[2]पूर्वकः ॥२०७॥
मानं च तत्र स्वपतोऽसुक्रिया[1] यत्नहेतुका ।
प्राणक्रियात्वतो जाग्रदसुचेष्टावदिष्यताम् ॥२०८॥
गुरुत्वमाद्यपातैका हेतुः स्यात् परिशेषतः ।
पार्थिवाऽऽप्याणुगं नित्यं कार्यगं हेतुपूर्वकम् ॥२०९॥
नित्याऽनुमेयमध्यूगं हेतुनाशाच्च नश्यति ।
द्रवत्वं स्यन्दने हेतुः स्याद् भूमिजलवह्निगम् ॥२१०॥
जले सांसिद्धिकं भूमितेजसोरग्नियोगजम् ।
[1]जत्वादावग्निसंयोगाश्रयनाशाच्च नश्यति ॥२११॥
स्नेहधीविषयस्नेहो जलकनिलयो मतः ।
नित्यताऽनित्यतोत्पत्तिव्यवस्था तु गुरुत्ववत् ॥२१२॥
संस्कारस्त्रिविधो वेगस्थितस्थापकभावना ।
तत्र वेगो महीतोयवह्निवायुमनोभवः ॥२१३॥
स द्वेधोक्तः क्रियावेगजत्वेनाद्यः शिरादिषु ।
जलेऽन्यः स्पर्शवद् द्रव्ययोगनाशी समीरितः ॥२१४॥

(२०६) १ उद्यम ।
(२०७) इच्छादिलिङ्गक । २ प्राणचेष्टालिंगकस्य ।
(२०८) १ प्राणचेष्टा ।
(२११) १ लाक्षादौ ।

प्रागवस्थाऽन्यधीभूतस्वाश्रयप्रागवस्थिते ।
सपादको गुणोऽभीष्ट स्थितस्थापकसज्ञित ॥२१५॥
नित्यताऽनित्यतोत्पत्तिप्रक्रिया तु गुरुत्ववत ।
गुणोऽसाधारण पुसो भावना स्मतिकारणम् ॥२१६॥
पटवभ्यासादरज्ञानजन्यो नित्यानुमेयक ।
अतीन्द्रियौ गुणौ पुसो धर्म्माधर्मावुदाहृतौ ॥२१७॥
पुत्राद्यभ्युदये हेतुधर्मो नि श्रेयसे तथा।
कैवल्यसज्ञे दु खैकहेतुधर्मेतरो मत ॥२१८॥
द्रव्यादेधर्म्मता ब्रूते तौतातितपदानुग ।
तथा सत्यक्षगम्य स्याद धर्मो नो वेदगोचर ॥२१९॥
क्रियाया क्षणभगित्वान्न तस्याश्च फल भवेत् ।
अत सोमादिकर्म्मभ्यो जात शब्दैकगोचर ॥२२०॥
आत्मनिष्ठ फलोत्पादि कर्तृ तत्कालवर्त्ति च ।
अपूर्व्व यत्तदेव स्याद् धर्माधमवच पदम ॥२२१॥
तौ चात्यसुखदु खादिविनाश्यौ वर्णितौ बुध ।
शब्द श्रोत्रकविज्ञेयो जात्याधार स च द्विधा ॥२२२॥
वर्ण्णो ध्वनिश्च तत्राद्य कादिरन्त्य करादिज ।
वर्णसघ पद प्रोक्त नन्वेतदसमञ्जसम् ॥२२३॥
प्रत्येकमभिदध्यु किमर्थ ते सघशोऽथवा ।
नाद्योऽप्रतीतेर्नान्त्योऽपि वर्णाना क्षणिकत्वत ॥२२४॥
सघातानुपपत्तेस्तद् यतोऽथप्रत्ययो भवेत् ।
स शब्द स्फोटसज्ञ स्यादित्यूचे पाणिनिर्मुनि ॥२२५॥

(२१६) १ आत्मन ।
(२१७) १ त्रिभ्योजन्य ।
(२१९) १ भाटट ।

नैतदेव यत पूर्व्ववर्णसस्कारसयुत ।
वर्णान्त्यो बोधकस्तस्मान्न युक्ता स्फोटकल्पना ॥२२६॥
विकर्षोत्कषकत्वेनानित्य शब्द सुखादिवत ।
सब्धोऽप्यथशब्दाना जन्य स्याद् द्वित्वशब्दवत ॥२२७॥
सब्धत्वात् तथा वेदवाक्य पुरुषनिर्मितम् ।
वाक्यत्वहेतुतो ह्यष कालिदासादिवाक्यवत् ॥२२८॥
ताल्वादिस्थानसभूतशब्दत शब्दसतति ।
जायतेऽत्रान्तिम शब्द श्रौत्रोऽन्यो नित्यमेयक ॥२२९॥
कर्मान्यत्वे सति ज्ञेया सामान्यकाश्रयत्वत ।
शब्दस्य गुणता रूपस्पर्शगन्धरसादिवत ॥२३०॥
स त्रेधा भाग सयोग शब्दजत्वविभागत ।
वशादिदलभागोत्थ आद्यो भेर्यादिजोऽपर ॥२३१॥
तृतीयस्तूक्त एवादावित्युक्तो गुणसग्रह ।
अन्तर्भावस्तु विज्ञेय इच्छादौ करुणादित ॥२३२॥
चतुर्विशतिरेवातो गुणा इति समञ्जसम् ।
अथाभिधीयते कर्म्मनिर्णयसग्रहोऽधुना ॥२३३॥
पदाथरत्नमञ्जूषाग्रन्थे कृष्णविनिर्म्मिते ।
पदार्थो गुणसज्ञोऽय समाप्तोऽतिप्रिय सताम ॥२३४॥

—*—

तृतीय-कर्माख्यपदार्थवर्णनम् ।

सयोग-भागयो कर्माऽसमवायिनिमित्तकम् ।
मान कम्मणि नास्तीति चेत् पश्य चलतीति धी ॥२३५॥

मान नन्वस्तु योगादिसततिस्तद्धिय पदम् ।
नैतदेतेन सयुक्त विभक्त चात इत्यपि ॥२३६॥

प्रतियोगिनिरूप्यत्वात तयोश्चलन वाग्धियो ।
प्रतियोगिनिरूप्यत्व न कदापि प्रतीयते ॥२३७॥

तथा पिपीलिकायोगभागसततिशालिनि ।
शाके चलनधीनवोदयमासादयत्यलम् ॥२३८॥

तस्मात् कम्म पृथक् सिद्ध तच्च पञ्चविध स्मृतम् ।
उत्क्षेपण तथैवापक्षेपणाकुञ्चने परे ॥२३९॥

प्रसारण गतिश्चेति तेषा लक्षणमीदृशम् ।
ऊर्ध्वदिग्योगहेतु स्यादाद्य चाधोदिशो युजे ॥२४०॥

निमित्तमन्यदृजु नोऽग्रभागानां वियोगके ।
तद्देशैर्मूलदेशैश्च सयोगे दोरको यत ॥२४१॥

कुटिल स्यात् तृतीय तु तद्विरुद्ध प्रसारणम् ।
अव्यवस्थितदिग्देशयोगाद्युत्पादि पञ्चमम् ॥२४२॥

मुशलोत्क्षेपणेच्छाया प्रयत्न स्यात् तत करे ।
यत्नापेक्षात्महस्तस्थयोगादुत्क्षेपण भवेत् ॥२४३॥

(२४१) १ ऋजुनो द्रव्यस्याग्रभागाना काशदेशवियोगे विभागे सति, तस्यव द्रव्य स्याग्रभागाना मूलदशश्च सयोग सति यतो दोरक कुटिल स्यात तदाकुञ्चन कर्म्मेत्यथ ।

तद्यत्नापेक्षमुशलहस्तयोगादुदेत्यनु ।
मुशलोत्क्षेपण पूर्वयत्नेच्छोच्छेदने तत ॥२४४॥
ततोऽपक्षेपणेच्छाया प्रयत्नस्तदपेक्षत ।
करात्ममुशलोद्धस्तयोगद्वन्द्वात समुदभवेत ॥२४५॥
अवक्षेपणकद्वन्द्व युगप मुशले करे ।
रज्जोराकर्षणेच्छाया प्रयत्नस्तदपेक्षत ॥२४६॥
हस्तात्मरज्जुहस्तस्थसयोगद्वयत करे ।
रज्जौ चाकुञ्चने स्यातामथ रज्जुप्रसारणे ॥२४७॥
इच्छायत्नस्तत पाणिकर्माऽतो रज्जुहस्तयो ।
सयोगो नोदनाख्य स्यात् ततो रज्जुप्रसारणम् ॥२४८॥
उत्पद्यते जलादौ च विना यत्नाश्रितो जनि ।
गतेरुत्तरसयोगाद् विनाश सर्वकर्मणाम ॥२४९॥
विनश्यद्द्रव्यनिष्ठस्याश्रयनाशत इरित ।
भ्रमपातप्रवेशादि त्वतभूत गतौ ध्रुवम ॥२५०॥
न जात्य नरला तेषा जातिसकरदोषत ।
कूपादौ वशपत्रादेर्वंशभ्रमणपातधी ॥२५१॥
जायते जातिभेदे तु जातिसकर आपतेत् ।
तस्मात् पञ्चव कर्माणीत्येतत् सम्यग् व्यवस्थितम् ॥२५२॥
पदार्थरत्नमञ्जूषाग्रन्थे कृष्णविनिर्मिते ।
पदार्थ कर्मसञ्ज्ञोऽय समाप्तोऽतिप्रिय सताम् ॥२५३॥

— o —

(२४४) १ उत्क्षेपणप्रयत्नापेक्षात ।

चतुर्थ-सामान्याख्यपदार्थवर्णनम् ।

अनेकवृत्ति नित्य यत तत सामा यमुदाहृतम् ।
अतश्चापोह एव स्यादश्वत्वमिति चे मतम् ॥२५४॥
अन तत्वादनश्वानामग्रहेऽश्वत्वधी कथम ।
न शुक्लेऽश्वे न चाभावे, गृह्यते नाश्वता तथा ॥२५५॥
अश्वधीपरतन्त्रा वाऽनश्वधीस्तदधीनका ।
अश्वधीरिति दुवारमन्यो याश्रयमापतेत ॥२५६॥
नातो बौद्धमतापोहो जातिव्या[१]डिमत वच ।
सादश्य जातिरेष्टव्या जातिमूल हि तद्यत ॥२५७॥
भूयोऽवयवसामा यथोगो जात्यन्तरस्य[१] य ।
तत्सादृश्यमतोऽपोहसादृश्या यदवस्थितम् ॥२५८॥
सामा य तत्र मान चानुवृत्तप्रत्ययो भवेत ।
पराऽपरभिदा द्वेधा तत्र सत्ता पर मतम् ॥२५९॥
अनुवृत्त्यकहेतुत्वाद भवेत सामान्यमेव सा ।
प्रमाणग्राह्यतवास्तु सत्ता न प्राक प्रवर्त्तिता ॥२६०॥
मानस्यासत्त्वमेव स्यात वस्तुनो नाप्यसत्यद ।
प्रवत्तत्ते तथा च स्याद योन्याश्रयता च ते ॥२६१॥
सति मान प्रमाण च सति सत्त्वमितीदृशी ।
अथक्रियापटुत्वेऽपि सत्त्वे दोषोऽयमेव ते ॥२६२॥
द्रव्यत्वादिपर तच्च व्यावर्त्तेरपि कारणम् ।
अतो विशेषसञ्ज्ञामप्यास्कन्दति तदेतयो ॥२६३॥

(२५७) १ पाणिनीयमतम् । | (२५८) १ पदार्थान्तरस्य

परतापरते भूय स्वल्पार्थत्वानमते मुने ।
तत्रव जातियस्मिन्न षटक स्याज्जातिबाधकम् ॥२६४॥
व्यक्त्यक्यतुल्यते तद्वदनवस्थितिसकरौ ।
सबन्धशून्यता रूपहानिरित्येष सग्रह ॥२६५॥
जातिर्नाऽऽकाशता व्यक्तेरेकत्वाद् घट कुभते ।
न जाती व्यक्तितुल्यत्वादन्योन्यव्यभिचारिणो ॥२६६॥
एकत्रस्थितिसङ्गस्य सकरस्य प्रसगत ।
दण्डिता-खड्गिते न स्तो जाती नो जातिताऽपि न ॥२६७॥
जाति स्यादनवस्थानान्न चापि समवायता ।
सबन्धायभावतो नापि समताऽन्त्यविशेषता ॥२६८॥
स्वरूपहानितो जाति षडेते यत्र बाधका ।
तात्पर्यत समालोच्यमाने सति मनीषिभि ॥२६९॥
न सति, जाति सष्टव्या सा च नित्यैव समता ।
विनाशहेत्वभावादित्येतत् सर्व सुमगलम् ॥२७०॥
पदार्थरत्नमञ्जूषाग्रन्थे कृष्णविनिर्मिते ।
सामान्याख्य पदार्थोऽय समाप्तोऽतिप्रिय सताम ॥२७१॥

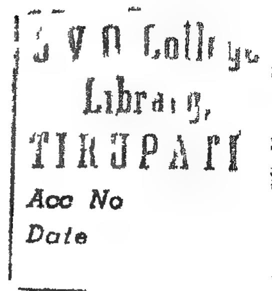
—*—

(२६४) १ कारित्वे ।

पञ्चम-विशेषाख्यपदार्थवर्णनम् ।

विशेषा हेतवोऽत्य तव्यावृत्तप्रत्ययोदये ।
नि सामान्यविशेषाश्च नित्यद्रव्याश्रयास्तथा ॥२७२॥
उष्ट्रादिभ्यो गवाश्वादौ व्यावृत्तप्रत्ययो यथा ।
गोत्वादिहेतुकस्तद्वत्तुल्याकृतिगुणादिके ॥२७३॥
व्यावृत्तप्रत्ययोऽण्वादौ प्रतिव्यक्ति यतो भवेत् ।
योगिना ते विशेषा स्युन वण्वात्मादिषु स्वत ॥२७४॥
व्यावृत्तधीर्विशेषाणामिव कि नोररीकृता ।
तुल्यजात्यादिभाकत्वा न व्यावृत्तप्रत्ययोदय ॥२७५॥
स्वतो द्रव्येषु जात्यादिहीनत्वात्तु विशेषधी ।
विशेषेषु स्वतो युक्ताऽत एवान्त्या उदीरिता ॥२७६॥
नित्याश्चाश्रयनाशादेर्नाशि हेतोरभावत ।
इति सिद्धि समाभ्यागाद्विशेषाणा निरूपणम् ॥२७७॥
पदाथरत्नञ्जूषाग्रथे कृष्णविनिर्मिते ।
विशेषाख्य पदार्थोऽय समाप्तोऽतिप्रिय सताम् ॥२७८॥

—**—



षष्ठ-समवायाख्यपदार्थवर्णनम् ।

सबन्धोऽयुतसिद्धानामिहधीहेतुरीरित ।
समवाय पथक्सिद्धि सप्रोक्ताऽयुतसिद्धिका ॥२७९॥
नित्यानित्याश्रयत्वेन द्वेधा चासौ समीरिता ।
अन्योन्यपरिहारेण पृथगाश्रयतोदिता ॥२८०॥
अनित्यगाऽम्बुघटयोरिव नित्याऽऽश्रयस्थिता ।
पथग् गमनयोग्यत्व स्यादणु स्वान्तयोरिव ॥२८१॥
युतसिद्धिरिय प्रोक्ताऽयुतसिद्धिरतोऽन्यथा ।
एका तन्तुपटारूढा वियद्द्रव्यत्वगाऽपरा ॥२८२॥
इह तन्तुषु शुक्लत्वमितीह प्रत्ययो ध्रुवम् ।
सबन्धपूवको ज्ञेय इहधीत्वाद् यथोदके ॥२८३॥
कजमित्येतदभ्युक्त परिशेषानुमानकम् ।
प्रमाण समवायोऽसौ नाशहेतोरभावत ॥२८४॥
नित्यो लिङ्गाविशेषात स स्यादेकोऽनेकता पुन ।
द्रव्यादिव्यञ्जकाधीना वृत्तिद्रव्यादिपञ्चके ॥२८५॥
नास्याद्रव्यत्वतो योगो नापि स्यात् समवायक ।
अनवस्थासमासत्तेरत स्वेनैव पञ्चसु ॥२८६॥
वृत्तिरिन्द्रियसबन्धाभावा नेन्द्रियगोचर ।
अतो नित्यानुमेय स्यात् समवाय इति स्थितम् ॥२८७॥
पदाथ षडविधो भाव इत्यद कणभुड् मतम् ।
अथाभिदध्महेऽभावपदार्थ सग्रहानुगम् ॥२८८॥
पदाथरत्नमञ्जूषाग्रन्थे कृष्णविनिर्मिते ।
समवाय पदार्थोऽय समाप्तोऽतिप्रिय सताम ॥२८९॥

सप्तम-अभावाख्यपदार्थवर्णनम् ।

पदाथ इतरोऽभावो नेतिधीशब्दगोचर ।
प्रमाण चाभ्यधाय्यस्मिन् स च ज्ञेयश्चतुर्विध ॥२९०॥
प्रध्वस प्रागभावश्चान्यो याभावस्ततीयक ।
अत्यन्ताभावकस्तुर्यो दण्डघाताद् घटादिषु ॥२९१॥
प्रध्वसो जायते नित्य स पटानुदयात्पुन ।
प्रागभावस्त्वज य स्याज्जनकाभावत स च ॥२९२॥
अनित्यो घटजन्मादिनाशकारणसभवात् ।
गोरश्वो न भवेदित्थम यो याभाव उच्यते ॥२९३॥
अनादिनिधनोऽभीष्टोऽत्य ताभावो विशारदै ।
वन्ध्यापुत्रो वियत्पुष्प नरभृड्गमितीदृश ॥२९४॥
पदार्थाविति सप्रोक्तौ भावाभावौ सुविस्तरौ ।
अनयोस्तत्त्वविज्ञाना मोक्ष सजायते नृणाम ॥२९५॥
पदाथरत्नमञ्जूषाग्र थे कृष्णविनिर्मिते।
अभावाख्य पदार्थोऽय समाप्तोऽतिप्रिय सताम ॥२९६॥

—*—

मोक्षस्वरूपवर्णनम् ।

ननु को नाम मोक्षोऽय शुद्धधीसततेज्जनिम ।
केचिदाहु परे तस्या अपि च्छेद परे पुन ॥२९७॥
सततोध्वगति प्राहु पु प्रकृत्योर्विवेचनात् ।
औदासीय पर पुस ऊचु कपिलसेविन ॥२९८॥
परिणामविहीनात्मावस्थान क्लेशसक्षये ।
नित्यानन्दगुणव्यक्ति मीमासाकुशला विदु ॥२९९॥
ब्रह्माशकस्य जीवस्योपाधिनाशेऽशिरूपताम् ।
केचिद् भवप्रवाहैकबीजाज्ञाननिवत्तनम ॥३००॥
नित्यात्मरूपानन्दाभिव्यक्ति वेदातिनो विदु ।
नैषामेकतमोऽप्यत्र पक्ष फाटसमथन ॥३०१॥
विषयोपप्लाभावे ज्ञानानुदयतोऽग्रिम ।
न युक्तोऽपुरुषाथत्वादितरोऽपि न शोभन ॥३०२॥
स्वोच्छेदार्थी यतो नैव कश्चिदप्यस्ति बुद्धिमान ।
परिच्छिन्नत्वतोऽनित्य स्यादात्मा च ततीयके ॥३०३॥
चतुर्थे मोक्षहेतूनामनुष्ठन न सभवेत् ।
उदासीनत्वत पुस प्रकृतेश्च जडत्वत ॥३०४॥
नित्यानन्दगुणास्तित्वे मानाभावान पञ्चम ।
षष्ठेंऽशाशित्वतो ब्रह्मानित्यमेव प्रसज्यते ॥३०५॥
सप्तमे ज्ञानहानिन सती द्वैतप्रसक्तित ।
नासती ज्ञानवयर्थ्यान्निह्यासज्जन्यते क्वचित् ॥३०६॥

(२९७) १ बौद्धा ।
(२९८) १ साख्या ।
(३०१) १ अनायासकृत 'फाट' मित्युच्यत ।

विरोधात्सदसत्त्वं न नाप्यनिर्वचनीयता ।
अनिर्वाच्यनिवर्त्तित्वान्नापि स्यात्पञ्चमी विधा ॥३०७॥
मानाभावादथात्मैव निवृत्तिरिति चेन्न तत् ।
तस्य नित्यत्वतो ज्ञानवैयर्थ्यस्य प्रसंगत ॥३०८॥
सुखस्यानुभवोऽभीष्टः पुरुषार्थः सुखं न तु ।
सुखं च दुःखयोग्ये च तस्मान्नाद समञ्जसम् ॥३०९॥
अतो विवेकिनः पुंसो विषये दोषदर्शनात् ।
विरक्तस्य निषिद्धादित्यागे नित्यादिसेवनात् ॥३१०॥
निवर्त्तकस्य धर्मस्योदयनेन समुच्चितात् ।
ज्ञानाच्छरीरबुध्यादिनवात्मगुणसंश्रये ॥३११॥
दग्धे धनाग्निवत् पुंसोऽवस्थानं मोक्ष उत्तमः ।
अत्यन्तोच्छेदिनी दुःखसंततिः संततित्वतः ॥३१२॥
दीपसंततिवन्मानमेतन्मोक्षे समीरितम् ।
अशरीरं वा वसन्तं न प्रियेत्यागमस्तथा ॥३१३॥
तस्मिन्मानं न सिद्धेऽर्थे वचसो मानतेष्यते ।
कार्यान्वितार्थवाचित्वात् पदानामिति चेन्न तत् ॥३१४॥
कार्यशब्देष्वनैकान्त्यान्नहि कार्यपदं वदेत् ।
कार्यान्तरान्वितं स्वार्थं कार्यद्वितयहानितः ॥३१५॥
एकवाक्येन चाप्यस्यान्वितमात्राभिधायिता ।
गौरवात् स्वार्थमेवातोऽभिदध्यादखिलं पदम् ॥३१६॥
आकांक्षादित्रयोपेताः पदार्थाः प्रतिपादकाः ।
वाक्यार्थस्येति सिद्धेऽयं मोक्षे शब्दस्य मानता ॥३१७॥

*

तस्मादकस्मान्नरपञ्चवक्त्रपादाम्बुजद्वन्द्वसमाधिभाजाम् ।
वैराग्यविज्ञानसमृद्धधर्मजुषां भवेद् दुःखनिवृत्तिरग्र्या ॥३१८॥

——*——

विद्यागर्वाद्रिरूढातिचपलरसनाग्रोग्रचित्तान्तराल-
प्रोद्यत्पाषण्डदण्डार्दितजनचयदुर्वादिपञ्चाननेन ।
मञ्जूषा षट्पदार्थाऽमलमणिगणसंराजिता निर्मितेयं
कृष्णेनागव्वविद्वज्जनचरणयुगाम्भोजसेवारतेन ॥३१९॥
पदार्थरत्नमञ्जूषाग्रन्थे कृष्णविनिर्मिते ।
निर्दोषो मोक्षवादोऽयं समाप्तोऽतिप्रियः सताम् ॥३२०॥

॥ इति श्रीमहाराष्ट्रवंश्यश्रीकृष्णभट्टविरचिता पदार्थरत्नमञ्जूषा समाप्ता ॥

निःशेषक्षितिपालमौलिविलसद्भास्वन्मणिश्रेणिसद्
दीपोद्दीपितपादपद्मयुगलः श्रीरेणुकासेविनि ।
पृथ्वीं शासति शार्ङ्गधारितनुसंभूतेऽर्ज्जुने राजनि
ग्रन्थोऽयं समकारि कृष्णकृतिना श्रीरेणुकाप्रीतये ॥३२१॥

॥ श्रीरस्तु शुभं भवतु ॥

परिशिष्टम्

पदाथरत्नमञ्जूषाया परत्वविनाशकारणानामभिधानमात्रमेव येन क्रमेणोक्त तेन प्रकारेणायमङ्कव्यवहार ।

(१) अनेन प्रकारेण द्रव्यविनाशादेव विनाश । (२) अनेनप्रकारेण सयोगविनाशादेव परत्वस्य विनाश ।

पडावयव कम —१		परत्वाधार पिड कम—१	अपेक्षाबद्धि —१
अवयवातर विभाग —२	अपक्षाबद्धि —१	दिक पिडविभाग —२	परत्वस्यात्पत्ति —२
पिडारभक सयोगनाश —३	परत्वस्यात्पत्ति —२	दिक पिंड सयोग विनाश —३	सामा यबुद्धेरत्पत्ति —३
पिंडविनाश —४	सामा यबद्धरत्पत्ति —३	परत्वस्य विनाश —४	
तन्निष्ठपरविनाश —५			

(३) अनेन प्रकारेण निमित्तविनाशादेव परत्वस्य विनाश ।

अपक्षाबुद्धि —१	गणबद्धरुत्पद्यमानता—३	अपक्षाबद्धविनश्यता —३
परत्वस्योत्पत्ति —२	गणस्य विनश्यता —४	गणबद्धेरुत्पत्ति —४
सामा यबद्धरत्पत्ति —३	द्र यबद्धरुत्पत्ति —५	द्र यबुद्धेरुत्पद्यमानता—५
अपक्षाबद्धविनाश —४		
ततश्च परत्वगणविनाश —५		

---

(४) एतत्प्रकारेण समवायिकारणनिमित्तकारणासमवायिकारणाना युगपन्नाशात परत्वस्य विनाश ।

पिंडावयव कम्म —१	अपेक्षाबद्धि —१	पिंडे कम ।
अवयवातर विभाग —२	परत्वस्यात्पत्ति —२	दिक्पिडविभा ।
पिंडारभकसयोगनाश —३	सामा यबद्धरत्पत्ति —३	दिक्पिडसयोगविनाश ।
पिंडविनाश —४	अपक्षाबद्धविनाश —४	परत्वस्य विनाश ।
पिंडनिष्ठपरत्वविनाश —५	ततश्च परत्वस्यविनाश —५	

(५) एव द्रव्यापेक्षाबुद्ध्योर्युगपद्विनाशात परत्वस्य विनाश ।

पिंडावयव कम —१	अपेक्षा बद्धि ।
अवयवातर विभाग —२	परत्वस्य योत्पत्ति ।
पिंडारभकसयागनाश —३	सामा यबद्धरुत्पत्ति ।
पिंडविनाश —४	अपक्षाबुद्धविनाश ।
पिंडनिष्ठपरत्वविनाश —५	ततश्च परत्वनाश ।

---

(६) अनेन प्रकारेण द्रव्यसयोगयोनाशात् युगपत परत्वगुणस्य विनाश इति ।

परत्वाधारावयव कम	—१	पिंडकम	—१	अपेक्षाबुद्धि	—१
अवयवातगाद्विभाग	—२	दिक् पिंड विभाग	—२	परत्वस्य योत्पत्ति	—२
पिडारभक सयोगनाश	—३	दिक् पिंड सयोगनाश	—३	सामायबद्धेरत्पत्ति	—३
पिडविनाश	—४	परत्वविनाश	—४	अपक्षाबद्धविनाश	—४
पिडनिष्ठपरत्वविनाश	—५				

(७) अनेन प्रकारेणापेक्षाबुद्धिसयोगयो युगपद्विनाशात् परत्वस्य विनाश इति ज्ञेयम् ।

अपक्षाबद्धि	—१	पर वाधार कर्मोपरि (प ?) द्यते	—१
परत्वस्य चोत्पत्ति	—२	दिक् पिंड विभाग	—२
सामायबद्धरुत्पत्ति	—३	दिक पिंडसयोगविनाश	—३
अपक्षाबद्धविनाश	—४	परत्वस्य विनाश	—४
(ततश्च परत्व) विनाश	—५		

॥ इति शुभम् ॥

॥ श्री ॥

पदार्थरत्नमञ्जूषाया श्लोकानुक्रमणिका



राजस्थान पुरातन ग्रन्थ माला

प्रधान सम्पादक—पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य

+++++++++

प्रकाशित ग्रन्थ

सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श

१ **प्रमाणमजरी**, तार्किकचूडामणि सवदेवाचायकृत सम्पादक – मीमासा यायकेसरी प० पट्टाभिरामशास्त्री विद्यासागर । मूल्य—६ ००

२ **य त्रराजरचना**, महाराजा सवाईजयसिंह कारित । सम्पादक—स्व प० केदारनाथ ज्योतिर्विद जयपुर । मूल्य—१ ७५

३ **महर्षिकुलवभवम** स्व० प० मधुसूदनओझा प्रणीत भाग १, सम्पादक—म म० प० गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी । मूल्य—१० ७५

४ **महर्षिकुलवभवम**, स्व पं० मधुसूदन ओझा प्रणीत भाग मूलमात्रम् सम्पादक—प० श्रीप्रद्युम्न ओझा । मूल्य—४ ००

५ **तकसग्रह** अन्नभट्टकृत सम्पादक—डॉ जिते द्र जेटली एम ए पी-एच डी मूल्य—३ ००

६ **कारकसबधोद्योत** प रभसन दीकृत सम्पादक—डा हरिप्रसाद शास्त्री एम ए, पी एच डी । मूल्य—१ ७५

७ **वत्तिदीपिका**, मौनिकृष्णभट्टकृत सम्पादक—स्व प पुरुषोत्तमशर्मा चतुर्वेदो साहित्याचाय । मूल्य—२ ०

८ **शब्दरत्नप्रदीप**, अज्ञातकतृ क सम्पादक—डा हरिप्रसाद शास्त्री एम ए, पी एच डी । मूल्य—२ ०

९ **कृष्णगीति**, कवि सोमनाथविरचित, सम्पादिका—डा प्रियबाला शाह एम ए पी एच डी डी लिट । मूल्य—१ ७५

१० **त्तसग्रह**, अज्ञातकत क सम्पादिका—डा प्रियबाला शाह, एम ए पी एच डी, डी लिट । मूल्य—१ ७५

११ **शृङ्गारहारावली** श्रीहषकवि रचित, सम्पादिका—डॉ प्रियबाला शाह एम ए पी एच डी डी लिट । मूल्य—२ ७५

१२ **राजविनोदमहाकाव्य** महाकवि उदयराजप्रणीत, सम्पादक—प० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम ए, उपसञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर । मूल्य—२ २५

१३ **चक्रपाणिविजय महाकाव्य**, भट्टलक्ष्मीधरविरचित, सम्पादक—प० श्रीकेशवराम काशीराम शास्त्री । मूल्य—३ ५०

१४ **नत्यरत्नकोश (प्रथम भाग)** महाराणा कुम्भकणकृत सम्पादक—प्रो रसिकलाल छोटा लाल पारिख तथा डा प्रियबाला शाह एम ए, पी एच डी, डी लिट । मूल्य—३ ७५

१५ **उक्तिरत्नाकर**, साधसु दरगणिविरचित सम्पादक—पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी, पुरातत्त्वाचाय सम्मा य सचालक राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर । मूल्य—४ ७५

१६ **दुर्गापुष्पाञ्जलि**, म म० प० दुर्गाप्रसादद्विवेदिकृत, सम्पादक—प० श्रीगङ्गाधर द्विवेदी साहित्याचाय । मूल्य—४ २५

१७ **कणकुतूहल**, महाकवि भोलानाथविरचित, इ ही कविवर की अपर सस्कृत कृति श्रीकृष्ण लीलामत सहित सम्पादक—प० श्रीगोपालनारायण बहुरा एम ए, मूल्य—१ ५

१८ **ईश्वरविलासमहाकाव्य**, कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्टविरचित, सम्पादक—भट्ट श्रीमथुरानाथशास्त्री साहित्याचार्य, जयपुर । स्व पी के गोड द्वारा अग्रजी में प्रस्तावना सहित । मूल्य—११ ५०

१९ **रसदीर्घिका** कविविद्यारामप्रणीत, सम्पादक—प० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम ए मूल्य—२ ००

२० **पद्यमक्तावली** कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्टविरचित सम्पादक—भट्ट श्रीमथरानाथ शास्त्री, साहित्याचाय । मूल्य—४ ००

२१ काव्यप्रकाशसकेत भाग १ भट्टसोमेश्वरकृत सम्पा –श्रीरसिकलाल छो० पारीख अग्रजी मे विस्तत प्रस्तावना एव परिशिष्ट सहित मूल्य–१२ ०

२२ काव्यप्रकाशसकेत भाग २ भट्टसोमेश्वरकृत सम्पा –श्रीरसिकलाल छो० पारीख, मूल्य–८ २

२३ वस्तुरत्नकाष अज्ञातकत क सम्पा०–डा प्रियबाला शाह। मूल्य–४ ०

२४ दशकण्ठवधम प० दुर्गाप्रसादद्विवदिकृत, सम्पा०–प० श्रीगङ्गाधर द्विवदी। मूल्य–४ ०

२५ श्री भुवनश्वरीमहास्तोत्र, सभाष्य पथ्वीधराचायविरचित कवि पदमनाभकृत भाष सहित पूजापञ्चाङ्गादिसवलित। सम्पा०–प श्रीगोपालनारायण बहुरा। मूल्य–३ ‍

२६ रत्नपरीक्षादि सप्त ग्र थ सग्रह ठक्कुर फरू विरचित, सशोधक–पद्मश्री मुनि जिनविजय पुरातत्त्वाचाय। मूल्य–६

२७ स्वयभूछ द महाकवि स्वयभूकृत, सम्पा० प्रो० एच डी वेलणकर। विस्तत भूमि (अग्रजी मे) एव परिशिष्टादि सहित मूल्य–७

२८ वत्तजातिसमुच्चय कवि विरहाङ्करचित, ,, , मूल्य–५

२९ कविदपण अज्ञातकत क, , , मूल्य–६

३० कर्णामतप्रपा भट्ट सोमेश्वर कृत सम्पा –पद्मश्री मुनि जिनविजय। मूल्य–२

३१ त्रिपुराभारती लघुस्तव लघुपण्डित विरचित सम्पा० , मूल्य–३

३२ पदाथरत्नमञ्जूषा प० कृष्ण मिश्र विरचित सम्पा० मूल्य–३



प्रेसो मे छप रहे ग्रंथ

सम्कत प्राकृत

१ शकुनप्रदीप लावण्यशमरचित सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय।

२ बालशिक्षाव्याकरण ठक्कुर सग्रामसिंहरचित, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय।

३ न दोपाख्यान, अज्ञातकृत क सम्पा –डा० बी जे साडसरा।

४ चा द्रव्याकरण आचाय च द्रगोमिविरचित, सम्पा०–श्री बी डी दोशी।

५ प्राकृतान द रघुनाथकवि रचित सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय।

६ कविकौस्तुभ प रघुनाथरचित, सम्पा०–श्री एम एन गोरे।

७ एकाक्षर नाममाला—सम्पा०–मुनि श्री रमणिकविजय।

८ नत्यरत्नकोश भाग २, महाराणा कुभकणप्रणीत सम्पा०–श्री आर सी पारिख डा प्रियबाला शा०।

१० इ द्रप्रस्थप्रब ध, सम्पा०–डा दशरथ शर्मा।

११ हमीरमहाका यम, नयच द्रसूरिकृत, सम्पा०–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय।

१२ वासवदत्ता, सब धकृत, सम्पा०–डा० जयदेव मोहनलाल शुक्ल।

१३ वत्तमुक्तावली कविकलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट कृत, स० प० भट्ट श्री मथुरानाथ शास्

१४ आगमरहस्य, स्व प० सरयूप्रसादजी द्विवेदी कृत, सम्पा०–प्रो० गङ्गाधर द्विवदी।

